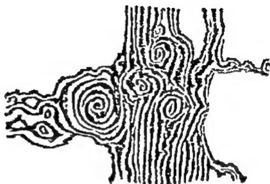
# एक रात का नरक

# एक रात



# का नरक

उपेन्द्रनाथ अश्क

## प्रकाशकीय

एक रात का नरक अश्क जी का पहला उपन्यास है, जिसे उन्होंने १६३५ में लिखा था। वर्षों तक यह पाडुलिपि अश्क जी की फाइलों में रखी रही और अश्क जी की प्रतिभा का प्रस्फुटन अन्य अद्वितीय उपन्यासों में हुआ।

कुछ दिन पहले अश्क जी ने पुरानी फाइलें देखीं तो उनके सामने यह पाडुलिपि भी आयी। लेकिन अश्क जी अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गिरती दीवारें' के तीसरे-चौथे खंड को लिखने की योजना बना चुके थे और उन्होंने इस उपन्यास में वर्णित घटनाओं को 'गिरती दीवारें' के इन अगले भागों में समाविष्ट करने की रूप-रेखा भी निर्धारित कर ली थी।

लेकिन इस योजना के बावजूद हमने उनसे यह आग्रह किया कि वे इसे प्रकाशित करने की अनुमति हमें दें ताकि अश्क जी के पाठकों के सामने हम उनकी यह पहली कृति रख सकें।

पाठक-गण निश्चित रूप से अश्क जी की प्रसिद्ध गद्य-यात्रा के आरम्भ-स्वरूप इस उपन्यास को पढ़ना पसन्द करेंगे और सहज ही वे मन्ज़िलें भी पाठकों के सामने स्पष्ट होंगी जिनसे होकर अश्क जी की औपन्यासिक प्रतिभा विकसित हुई।

## अश्क जी के प्रसिद्ध उपन्यास

o

गिरती दीवारें

गर्म राख

सितारों के खेल

पत्थर अल-पत्थर

बड़ी बड़ी आँखें

शहर में घूमता आईना

तथा शीघ्र प्रकाश्य

बाँधो न नाव इस ठाँव

और

एक नन्ही-सी क़िन्दील

# आभास

उस दिन 'इलस्ट्रेटेड वीकली' को देखते-देखते निम्नलिखित पंक्तियाँ मेरी नजर में गुजरीं :

'मेला लोकप्रिय मालूम होता है। इस बार २८ और २९ मई को मेला लगा। शिमले से बहुत-से लोग मशोबरे गये और वहाँ से उस गहरी घाटी की ओर मुड़े, जो कोटी के राणा की रियासत में शामिल है।

'मेले की एक खूबी पहाड़ की सुन्दर युवतियाँ हैं, जो भड़कीले कपड़े पहने हुए पहाड़ी के एक ओर बैठी हुई मेले में होने वाले खेल-तमाशों और दूसरे कौतुकों को देखती हैं। सुनते हैं कि प्राचीन काल में इसी दो दिन के समारोह में शादियाँ पक्की होती थीं और वधुएँ चुनी जाती थीं।

'कोटी के राणा सदैव बहुत-से मित्रों को आमन्त्रित करते हैं और अपने अतिथि-सत्कार के लिए सुप्रसिद्ध हैं। शिमले में आने वाले प्रायः सभी लोग, चाहे वे कितने भी कम दिनों के लिए क्यों न आयें, सी-पी और इसके प्रसिद्ध मेले को अवश्य देखते हैं।'

(जून, १९३५)

मेरा सोया हुआ संकल्प जाग उठा। एक वर्ष हुआ मैंने भी सी-पी के इस मेले के सम्बन्ध में कुछ लिखने की सोची थी, मुझे वहाँ जिस अतिथि-सत्कार का अनुभव हुआ था उसका वृत्तांत लिखने की इच्छा थी, पर जिन्दगी और उसकी व्यस्तताएँ—शिमले से आते ही कुछ ऐसा उलझा कि सब कुछ भूल गया। उस दिन इन पंक्तियों को पढ़ कर ... में

फिर कुछ लिखने की प्रबल आकांक्षा जाग उठी—उन बातों को लिखने की, जिन्हें मेले में जाने वाले—बहुत अर्से से जाने वाले भी प्रायः नहीं जानते। मैं इस बलवती इच्छा को नहीं रोक सका। कलम मैंने उठायी और पुस्तक मैंने लिख भी डाली, पर १९३५ से अब तक मेरी मुसीबतों और संघर्षों ने मुझे दोबारा इस पर नज़र डालने का अवसर नहीं दिया। अब इसे दोबारा देख कर और डायरी की सहायता से कुछ भूले हुए ब्योरों को साफ़ करके, मैं यह पुस्तक पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ।

—उपेन्द्रनाथ अश्क

एक रात का नरक

एक

कुछ षड्यन्त्र-सा हुआ । मैं इसे षड्यन्त्र ही कहूंगा, आप कोई दूसरा नाम दे लें। भोलानाथ ने रामलाल के कान में कुछ कहा या रामलाल ने भोलानाथ के अथवा इसका आरम्भ पण्डित तेजभान के प्रस्ताव से हुआ, कुछ भी हो, षड्यन्त्र हुआ —और हम इसमें ऐसे ही जा फंसे, जैसे मक्खी जाल के सुनहरी तारों में।

इतवार की सुबह थी, रात शिमले में भी मैदानों जैसी गर्मी पड़ी थी और सुबह भी थी निखरी हुई, धुली हुई। मैं द्वार पर कुर्सी डाले सामने केलू[1] के वृक्षों की ओर निर्निमेष देख रहा था—उन लम्बे सीधे वृक्षों की ओर, जो न जाने यों स्थिर, अविचल, अटल खड़े किस प्रेयसी की प्रतीक्षा किया करते हैं' जाने किस निष्ठुर स्वामी की सेवा में खड़े रहते हैं ? नीचे खड्ड थी—गहरी और मौन ! और सामने था पहाड़—किसी प्रागैतिहासिक हाथी की भांति आराम से लेटा हुआ। धूप मेरे शरीर के आधे भाग को गर्म कर रही थी। शायद उसमें काफ़ी तेज़ी थी, पर मुझे धूप में बैठने की लत-सी है। पत्तों से छन कर धूप की किरणें मेरे शरीर को गर्म कर रही थीं। मैं कुछ सोच भी रहा था—कुछ अजीब-सी बात !....लोगों का कहना है कि घनी-से-घनी वर्षा में भी केलू का वृक्ष नहीं भीगता। मैं

१. केलू—देवदारु

# एक

कुछ षड्यन्त्र-सा हुआ । मैं इसे षड्यन्त्र ही कहूँगा, आप कोई दूसरा नाम दे लें । भोलानाथ ने रामलाल के कान में कुछ कहा या रामलाल ने भोलानाथ के अथवा इसका आरम्भ पण्डित तेजभान के प्रस्ताव से हुआ, कुछ भी हो, षड्यन्त्र हुआ —और हम इसमें ऐसे ही आ फँसे, जैसे मक्खी जाल के सुनहरी तारों में ।

इतवार की सुबह थी, रात शिमले में भी मैदानों जैसी गर्मी पड़ी थी और सुबह भी थी निखरी हुई, धुली हुई । मैं द्वार पर कुर्सी डाले सामने केलू[1] के वृक्षों की ओर निर्निमेष देख रहा था—उन लम्बे सीधे वृक्षों की ओर, जो न जाने कब से स्थिर, अविचल, अटल खड़े किस प्रेयसी की प्रतीक्षा किया करते हैं? जाने किस निष्ठुर स्वामी की सेवा में खड़े रहते हैं ? मौन खड़े थे—गहरी और मौन ! और सामने था पहाड़—किसी प्रागैतिहासिक हाथी की भाँति आराम से बैठा हुआ । धूप मेरे शरीर के आधे भाग को गर्म कर रही थी । शायद उसमें काफ़ी तेज़ी थी, पर मुझे धूप में बैठने की लत-सी है । पर्दों से छन कर धूप की किरणें मेरे शरीर को गर्म कर रही थीं । मैं कुछ सोच भी रहा था—कुछ अजीब-सी बात !...लोगों का कहना है, कि घनी-से-घनी वर्षा में भी केलू का वृक्ष नहीं भीगता । मैं,

१. केलू—देवदार

सोचता था कि तीक्ष्ण-से-तीक्ष्ण धूप में भी यह नहीं तपता। इसका आधा भाग सदैव शीतल वना रहता है। केलू वर्षा ही पर विजय नहीं पाता, धूप को भी पराजित कर देता है। उस समय मेरा मन उस तपस्वी, उस ऋषि, उस संन्यासी के प्रति श्रद्धा से आप्लावित हो उठा।....कि तभी आवाज़ आयी।

"मास्टर जी!"

मेरे विचारों का क्रम टूट गया। भाग कर ऊपर गया। लाला जी मेरी ओर ही आ रहे थे, रास्ते में ही सामना हो गया। मैंने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उनकी ओर देखा।

"सी-पी[1] चलोगे?"

"सी-पी?"

"हाँ, सी-पी के मेले में!"

मैं जैसे अव नींद से जागा। बोला—"मैंने तो हाँ कर दी थी।"

"वह तो ठीक है," लाला जी हँसते हुए बोले, "लेकिन वो यमदूत आये हुए हैं....तो फिर मैं आपका चन्दा दे दूँ, मेरा ख़याल था कि आप अपना इरादा...." और यह कहते-कहते हँसते हुए लाला जी वापस कमरे में चले गये। मैं भी उनके पीछे गया। वहाँ वही त्रिमूर्ति विराजमान थी—जो अपने साथियों में 'मैसर्ज़ भोलानाथ एण्ड कं०' के नाम से याद की जाती थी। एक अपनी मोटी तोंद को सम्हाले वैठे थे तो दूसरे अपने (रात सिनेमा देखने के कारण) मुरझाये मुख को लिए। हाँ, तीसरे महाशय हर प्रकार से चुस्त और चाक-चौवन्द थे, जैसे मित्रों को मेला दिखा लाने जैसा महान काम उन्हें अकेले सरंजाम देना हो।

मेरे सामने लाला जी ने इन महाशयों को तीन रुपये दे

---

१. सी-पी—सीपुर।

दिये। एक अपना, एक मेरा और एक पण्डित तेजभान का। वे हमारी कोठी से तनिक दूर कसुमटी में रहते थे। वहाँ ये लोग जाने से कभी कतरा रहे थे, क्योंकि उन्हें अभी नहाना-धोना और दूसरे कामों से छुट्टी पाना था, फिर सब काम छोड़ केवल चन्दा उगाहने के लिए कहाँ तक मारे-मारे फिरते? लाला जी ने भी उनकी कठिनाई को समझ लिया और इसलिए पण्डित तेजभान का चन्दा भी स्वयं दे दिया। इसके बाद हमारी दिलपसन्द मिठाइयों और फलों का नाम पूछकर यह 'तिगड्डम' रफ़ूचक्कर हुआ, लाला जी बाथ-रूम में चले गये और मैं अपनी कुर्सी पर आ कर निश्चेष्ट बैठ गया।

यही था वह षड्यन्त्र—हमें सी-पी के मेले में ले जाने, वहाँ की रौनक दिखाने, मिठाई और फल खिलाने का। आप इसे 'मीठा षड्यन्त्र' कह लें और सच्ची बात तो यह है कि ऐसे प्रयास को षड्यन्त्र का नाम दिया ही नहीं जा सकता, लेकिन बाद में जो घटनाएं घटीं, उन्होंने 'मैसर्ज भोलानाथ एण्ड कं०' के इस प्रयास को षड्यन्त्र बना डाला और उन्हें षड्यन्त्रकारी। खिलाये का नाम नहीं, रुलाये का नाम—कहावत ऐसी ही स्थिति में होंटों पर आती है।

प्रश्न उठता है कि मैं इस साजिश में फंसा ही क्यों? अब यह तो प्रकट है कि इस बहाने मिठाई खाने या फल उड़ाने का मेरा विचार कतई नहीं था। यह काम तो शिमले में भी भली-भाँति हो सकता था। और न ही सैर-सपाटे के खयाल से मैं उनके साथ गया था, क्योंकि, सैर तो शिमले के जीवन का आवश्यक अंग थी। बात वास्तव में यह थी कि मैंने कभी पहाड़ी मेला न देखा था। लाला जी तो खैर हर वर्ष सरकारी दफ़्तरों के साथ शिमले आते थे और सी-पी का मेला देखते थे, लेकिन मैं तो गत वर्ष आया ही देर से था और इससे पहले कभी

आने का सुअवसर ही नहीं मिला था। इस मेले के सम्बन्ध में तरह-तरह की किम्वदन्तियाँ, तरह-तरह की कहानियाँ सुनी थीं। इसलिए इसे देखने का औत्सुक्य भी इस साल दुगना हो गया था। सुना था वहाँ स्त्रियों की प्रदर्शनी होती है, वहाँ मेले में ही शादी-विवाह के मामले तय हो जाते हैं। इसलिए मैं देखना चाहता था कि सचमुच वह रियासत क्या अमरीका और इंगलिस्तान से भी दो पग आगे निकल गयी है अथवा पुरातन काल के रोम की तरह यहाँ भी स्त्रियों की मंडी लगती है और बर्बरता का दौर-दौरा है। कौतूहल, औत्सुक्य की आग पर तेल का काम दे रहा था। एक साल से दबी हुई चिनगारी चमक उठी थी।

पिछले वर्ष, जैसा कि मैंने कहा, मैं पहुँचा ही देर से था। मेला समाप्त हो चुका था और मेरे भाग्य में वे कहानियाँ रह गयी थीं, जो साल भर लोगों की ज़बान पर रहती हैं—मेले में हारे हुए जुआरियों की, मदमत्त शराबियों की, वहाँ आये हुए अंग्रेज़ अफ़सरों को मीना बाज़ार की सैर करा के अपने आतिथ्य का प्रमाण देने वाले राजा की और वहाँ आयी हुई पहाड़ी युवतियों, उनकी वेश-भूषा, उनकी सुन्दरता और बेबाक़ी की कहानियाँ! फिर यदि मेरी उत्सुकता इस सुअवसर को पा कर भड़क उठी तो इसमें मेरा क्या दोष है? एक शहरी के लिए यह दृश्य एकदम नया है। उस मेले में, जहाँ जुआ हो, शराब उड़े, गन्दे अश्लील गीत गाये जायँ, वहाँ स्त्रियाँ भ… आयें, इससे बढ़ कर अचम्भे की बात मैदानों से आने वाले ए… पंजाबी युवक के लिए और क्या हो सकती है? फिर यह … सुना था कि न केवल स्त्रियाँ स्वयं जाती हैं, बल्कि उनके लि… रियासत की ओर से प्रबन्ध भी किया जाता है। हमारे य… ऐसे मेलों—शहरों ही के नहीं, वरन् उजड्ड, अनपढ़ अ…

गंवार देहातियों के मेलों में भी स्त्रियां नहीं जातीं, फिर यहां लज्जा और सरलता को छोड़ कर स्त्रियों का मेले में आना अजीब-सी बात लगती थी। सोचा, चलो सैर के साथ-साथ पहाड़ी संस्कृति और सभ्यता की भी जानकारी हो जायेगी। शिमला सभ्य लोगों की बस्ती है, वहां रह कर पहाड़ी लोगों के जीवन का अध्ययन नहीं हो सकता। इसके लिए पहाड़ी गांवों में ही जाना पड़ेगा। सी-पी में सब ओर से आ कर पहाड़ी लोग सम्मिलित होंगे। उनके जीवन की कहानी इससे अधिक और कहां सुनी जा सकेगी।

अब इसे भाग्य का खेल समझिए कि औरों की कहानियां सुनते-सुनते मेले में मेरी उपस्थिति एक ऐसी कहानी का विषय बन गयी, जो औरों के लिए ही नहीं, मेरे मित्रों के लिए भी वाद-विवाद तथा दिलचस्पी का विषय हो गयी।

...सरे दिन छोटे शिमले के पनवाड़ी की घड़ी ने ए...
आठ बजे अपने सामने खड़े पाया। तय भी यही हुआ था, पर
कोई काम ठीक समय पर कर लें, ऐसी बात तब क्या, अभी तक
हम हिन्दुस्तानियों को नहीं आयी। प्रायः देखा गया है कि सभा
हो रही है, लोग प्रतीक्षा बने खड़े हैं, औत्सुक्य है कि मूर्तिमान
हो कर सभा पर छा गया है, पर प्रधान महोदय का कहीं पता
ही नहीं। यहाँ भी कुछ ऐसी ही बात थी। पार्टी के सब सदस्य
उपस्थित, पर संयोजक ऐसे ग़ायब, जैसे गधे के सिर से सींग।

लाला जी ठहरे समय के पाबन्द और बन्दा भी इस मामले
में अंग्रेज़ों के कान काटता है और यद्यपि रात को दो बजे ही
सो पाया था और सोते में भी सी-पी के स्वप्न देखता रहा था,
तो भी जब सुबह छः बजे लाला जी ने आवाज़ दी तो ऐसा उठ
बैठा जैसे उनकी आवाज़ की ही प्रतीक्षा कर रहा था। झट
उठा और शौचादि से निवृत्त हो कर पट स्नान किया और खाने
की मेज़ पर जा डटा। चावल बने थे मटर वाले, सुगन्धि से
दिमाग़ महक उठा। भूख नहीं थी तो भी लग आयी। बन्दे
ने भी उनसे इंसाफ़ किया। सी-पी जा कर भी कुछ खाने को
मिलेगा, इस बात को एकदम भुला दिया। प्लेट-पर-प्लेट च...
कर गया। उधर लाला जी ने आवाज़ दी—आप अभी खा...
ही खा रहे हैं? और इधर मैं झट हाथ-मुंह धो, कपड़े पह...
कर तैयार हो गया। ठीक आठ बजे पनवाड़ी की घड़ी ने ...
अपने सामने खड़े हुए पाया।

"ह, ह, ह, हा, हा हा हा हा...."

एक लम्बा क़हक़हा—एकदम मौलिक । ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड की तरह । ऐसा लगा कि किसी ने ठहाका लगाने वाली मशीन को चाबी दे दी है और वह ठठाये जा रही है ।

हम मुड़ कर खड़े हो गये ।

पण्डित तेजभान ऊपर को मुँह किये हँस रहे थे । हँसते समय उनकी आँखों की पुतलियाँ दायीं ओर को चढ़ जाती हैं और मुँह ऊपर को उठ जाता है ।

"आप यहाँ आ पहुँचे हैं और उधर आपकी प्रतीक्षा हो रही है," पण्डित जी ने हँसना बन्द करते हुए कहा ।

"किधर ?"

"कसुमटी में ?"

"लाहौल विला कुव्वत," मैंने दिल में कहा । इन महाशयों के लिए कसुमटी और छोटे शिमले में कोई अन्तर ही नहीं । एक उत्तर में है तो दूसरा दक्षिण में ! निश्चय हुआ था छोटे शिमले इकट्ठे होने का और आप जमा हुए कसुमटी में !

"क्यों, वहाँ क्यों प्रतीक्षा हो रही है ?" लाला जी बोले ।

"उनका ख़याल था कि आप कसुमटी में होंगे ।"

"उन्होंने मुझे इतना मूर्ख समझ लिया है कि मैं कसुमटी को छोटा शिमला समझ लूँ ?"

"उन्होंने समझा था आप मेरी ओर आयेंगे ।"

"उनकी समझ के क्या कहने !" और लाला जी ने बेज़ारी से सिर हिलाया और 'हूँ' की ।

"ह ह ह, हा हा हा हा...." पण्डित जी ने फिर एक लम्बा ठहाका लगाया ।

"कहो, अब क्या इरादे हैं ?" लाला जी ने पूछा ।

"मैंने उन्हें कह दिया था कि मैं लाला जी की ओर से होता हुआ छोटे शिमले पहुँच जाऊँगा । वे पण्डित मंशाराम को

दो

दूसरे दिन छोटे शिमले के पनवाड़ी की घड़ी ने हमें ठीक आठ बजे अपने सामने खड़े पाया। तय भी यही हुआ था, पर कोई काम ठीक समय पर कर लें, ऐसी बात तब क्या, अभी तक हम हिन्दुस्तानियों को नहीं आयी। प्रायः देखा गया है कि सभा हो रही है, लोग प्रतीक्षा बने खड़े हैं, औत्सुक्य है कि मूर्तिमान हो कर सभा पर छा गया है, पर प्रधान महोदय का कहीं पता ही नहीं। यहाँ भी कुछ ऐसी ही बात थी। पार्टी के सब सदस्य उपस्थित, पर संयोजक ऐसे ग़ायब, जैसे गधे के सिर से सींग।

लाला जी ठहरे समय के पाबन्द और बन्दा भी इस मामले में अंग्रेज़ों के कान काटता है और यद्यपि रात को दो बजे ही सो पाया था और सोते में भी सी-पी के स्वप्न देखता रहा था, तो भी जब सुबह छै बजे लाला जी ने आवाज़ दी तो ऐसा उठ बैठा जैसे उनकी आवाज़ की ही प्रतीक्षा कर रहा था। झट उठा और शौचादि से निवृत्त हो कर पट स्नान किया और खाने की मेज़ पर जा डटा। चावल बने थे मटर वाले, सुगन्धि से दिमाग़ महक उठा। भूख नहीं थी तो भी लग आयी। बन्दे ने भी उनसे इंसाफ़ किया। सी-पी जा कर भी कुछ खाने को मिलेगा, इस बात को एकदम भुला दिया। प्लेट-पर-प्लेट चट कर गया। उधर लाला जी ने आवाज़ दी—आप अभी खाना ही खा रहे हैं? और इधर मैं झट हाथ-मुँह धो, कपड़े पहन कर तैयार हो गया। ठीक आठ बजे पनवाड़ी की घड़ी ने हमें अपने सामने खड़े हुए पाया।

"ह, ह, ह, हा, हा हा हा हा...."

एक लम्बा कहकहा—एकदम मौलिक । ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड की तरह । ऐसा लगा कि किसी ने ठहाका लगाने वाली मशीन को चाबी दे दी है और वह ठठाये जा रही है ।

हम मुड़ कर खड़े हो गये ।

पण्डित तेजभान ऊपर को मुँह किये हँस रहे थे । हँसते समय उनकी आँखों की पुतलियाँ दायीं ओर को चढ़ जाती हैं और मुँह ऊपर को उठ जाता है ।

"आप यहाँ आ पहुँचे हैं और उधर आपकी प्रतीक्षा हो रही है," पण्डित जी ने हँसना बन्द करते हुए कहा ।

"किधर ?"

"कसुमटी में ?"

"लाहौल विला क़ुव्वत," मैंने दिल में कहा । इन महाशयों के लिए कसुमटी और छोटे शिमले में कोई अन्तर ही नहीं । एक उत्तर में है तो दूसरा दक्षिण में ! निश्चय हुआ था छोटे शिमले इकट्ठे होने का और आप जमा हुए कसुमटी में !

"क्यों, वहाँ क्यों प्रतीक्षा हो रही है ?" लाला जी बोले ।

"उनका ख़याल था कि आप कसुमटी में होंगे ।"

"उन्होंने मुझे इतना मूर्ख समझ लिया है कि मैं कसुमटी को छोटा शिमला समझ लूँ ?"

"उन्होंने समझा था आप मेरी ओर आयेंगे ।"

"उनकी समझ के क्या कहने !" और लाला जी ने बेज़ारी से सिर हिलाया और 'हूँ' की ।

"ह ह ह, हा हा हा हा—" पण्डित जी ने फिर एक लम्बा ठहाका लगाया ।

"कहो, अब क्या इरादे हैं ?" लाला जी ने पूछा ।

"मैंने उन्हें कह दिया था कि मैं लाला जी की ओर से होता हुआ छोटे शिमले पहुँच जाऊँगा । वे पण्डित झंडालाल को

तैयार कर रहे हैं।

"झंडालाल को कल किसी ने कहा नहीं था।"

"कहा तो था, लेकिन कल सुना था; उनकी पत्नी बीमार हैं, फिर शाम को ख़बर मिली कि उनकी लड़की को बुख़ार हो आया है, आज वे कह रहे हैं कि उनका छोटा लड़का अस्वस्थ है। यदि कुछ और ठहर कर जाने की रहे तो शायद उस समय तक स्वयं उनके बीमार पड़ जाने का समाचार मिल जाये।"

लाला जी ने फिर बेज़ारी से सिर हिलाया और कहा, 'हुँ !....' उसी समय श्री दौलतराम अपनी सुन्दर मुस्कराती सूरत लिये अपने मकान की सीढ़ी से उतरते दिखायी दिये। तब तक पार्टी के दूसरे सदस्य भी इकट्ठे हो चुके थे।

दौलतराम को सीढ़ी से उतरते देख मुझे कुछ प्यास लग आयी। मैंने कहा—"लाओ यार, जब तक मन्त्री महोदय आयें पानी के दो-एक गिलास ही पिलवाओ।" वे हंसते-हँसते फिर वापस चले गये। इस बीच में ऐसा लगा कि यह प्यास का रोग बुरी तरह बढ़ने लगा, क्योंकि ज्यों ही दौलतराम पानी के गिलास लाये, लाला जी को प्यास लग गयी और फिर उस समय तक एक-न-एक को लगती चली गयी जब तक सारी पार्टी पानी न पी चुकी और प्यास के इस रोग को बढ़ने के लिए और व्यक्ति न मिला।

पानी पी कर निश्चिन्त होते ही मैंने एक मारके की बात नोट की कि लाला जी की नेकर उनके अण्डे के समान पेट से नीचे खिसकती चली आ रही है। बात यह है कि उनकी पेटी उनकी इस अंडाकार तोंद पर टिकती न थी। यदि उनका पेट बहुत मोटा होता तो पेटी टिक जाती जैसे मुकन्दीलाल जी के पेट पर मज़े से टिक रही थी, लेकिन लाला जी का पेट अभी तक विकास की प्रारम्भिक मंज़िलें तय कर रहा था। उनकी

नेकर इस प्रकार नीचे को खिसक आयी थी जैसे लोअर प्राइमरी की पहली-दूसरी श्रेणी में पढ़ने वाले छात्रों के पाजामे ।—मैंने लाला जी का ध्यान इस ओर आकर्षित किया ।

लाला जी ने खिन्न-से हो कर अपने पेट को कोसते हुए नेकर को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया, लेकिन यह कमबख्त फिर नीचे खिसक आयी । लाला जी हताश हो कर अपने पेट को कोसने लगे । "यह पेट भी कमबख्त बुरी तरह बढ रहा है," लाला जी बोले, "बहुतेरी सैर करता हूँ, बहुतेरी कसरत करता हूँ, पर यह कम होने का नाम नहीं लेता । मुझे राजा इन्द्रमन[1] की भाँति चालीस रोज का फ़ाका न करना पड़े ।"

मैंने कहा, "लाला जी, इस कोसने से काम न चलेगा, आप किसी-न-किसी तरह गैलस मँगाइए । यह पुराने फ़ैशन की नेकर है, सहारा न होने से पेटी के ऊपर उलट गयी है, बटन तक दिखायी दे रहे हैं । इस सूरत मे तो मेले नहीं चलना चाहिए । आप गैलस क्यों नहीं मँगा लेते ?"

मेरे इस अमूल्य परामर्श का सबने समर्थन किया । अब यह

१. एक राजा था जो इतना मोटा हो गया कि चल फिर न सकता था। उसने वैद्य को बुलाया । वैद्य था समझदार और साथ ही ज्योतिषी । उसने कहा महाराज ४० दिन तक तो सिर्फ़ आपको जीना है, फिर ज्योतिषशास्त्र के अनुसार आपको मृत्यु हो जायेगी । अब आप इलाज क्या करायेंगे । बस उस दिन से राजा ने खाना-पीना छोड़ दिया । चिन्ता के कारण सवा महीने में ही कृशकाय हो गया । जब चालीसवें दिन मृत्यु की बाट जोहने पर भी वह न आयी तो उसने वैद्य को बुलाया । वैद्य हँसा । उसने कहा—आपकी बीमारी को आराम आया है या नहीं ? मौत आपके दुश्मनों को आये । आपका इलाज यह था कि आप कम खायें । यह इसी तरह सम्भव था ।

सोच पैदा हुई कि गैलस आयें कहाँ से ? इस नाज़ुक वक़्त पर भी दौलतराम जी काम आये। उन्होंने झट से गैलस ला कर लाला जी के हाथ में दे दिये। लाला जी झटपट पेटी को उतार कर गैलस फिट करने लगे। लेकिन यह क्या ? यहाँ तो दो बटन ही नदारद थे। झट उन्हें उतार कर गैलस दौलतराम जी को वापस करते हुए लाला वोले—"इस वदकिस्मत निक्कर के भाग्य में यों ही लटकना लिखा है।"

मैंने कहा, "हताश न हों, वो उधर देखिए, काम वन सकता है।"

उधर दुकान पर चेचक के मारे सिख सरदार बैठे कपड़े सी रहे थे। लाला जी ने मेरा अभिप्राय समझ लिया, क्योंकि दूसरे क्षण वह दुकान पर बटन लगवा रहे थे।

इसी वीच संयोजक महोदय लाला भोलानाथ जी भी हाँपते-हाँपते आ पहुँचे। खैर गुज़री कि वे पण्डित झंडालाल को साथ घसीट ही लाये, नहीं तो वक्त के इस दुरुपयोग पर उन्हें जो-जो वुरी-भली सुननी पड़तीं, उन्हें यहाँ लिखा नहीं जा सकता।

अव जो पनवाड़ी की घड़ी की ओर देखा तो दस वजने में कुछ ही मिनट वाकी थे। पार्टी चल पड़ी। नौ मील की कठिन मंज़िल और सिर पर तेज़ धूप।

चलते समय कोई विशेष घटना नहीं हुई, केवल लाला जी के घुटने पर चोट आ गयी। वात कुछ न थी। रास्ते में महता जी भी मिल गये। सवने उन्हें भी साथ चलने का आग्रह किया। वे कुछ थके हुए थे, कुछ परेशान भी थे, लेकिन यहाँ मानने वाला कौन था ? उनका घर रास्ते में ही पड़ता था। वे तैयार होने के लिए चले गये और ये लोग 'जहाँ सौ वहाँ सवा सौ' के अनुरूप उनकी प्रतीक्षा करने लगे।

मैं दो घण्टे खड़ा-खड़ा कुछ थक गया था, इसलिए रास्ते के

किनारे लगी हुई तार पर बैठ गया। उस समय मालूम होता है लाला मुकुन्दी लाल जी को भी थकावट महसूस हुई। हो सकता है उन्हें मेरा यों आराम से बैठना अखरा हो। वे खम्बे के दूसरी ओर अपने भारी भरकम शरीर के साथ बैठ गये। मेरी ओर तार खिंच गयी जैसे चर्खी फिरने पर रेल के सिगनल की तार और मैं मुंह के बल सड़क पर गिरता-गिरता बचा। इस पर सब हँस पड़े। मुझसे यह अपमान सहन न हो सका। दुबारा वहीं बैठ कर, मैंने जोर लगाया, पर कहाँ हाथी और कहाँ चुहिया, तार जरा भर भी नीची न हुई। उन्हें मेरी इस स्पर्धा पर, शायद क्रोध आ गया और उन्होंने तार पर और भी जोर दिया। फल यह हुआ कि खम्बा ही टूट गया। लाला जी उस पर पाँव टिकाये खड़े थे। उनके घुटने पर चोट आ गयी। हम दोनो खिन्न हुए, परन्तु लाला जी ने 'मामूली बात है'—कह कर टाल दिया।

उस समय यद्यपि इसे साधारण घटना समझ लिया गया, पर मेरा माथा उसी समय ठनका था। दिल ने कहा, यह बुरा अपशकुन हुआ। आज किसी-न-किसी की खैर नहीं। मुझे क्या मालूम था कि विधाता का नज़ला मुझी पर गिरेगा और मैं ही उसकी कोप-दृष्टि का भाजन बनूंगा।

महता जी के आने पर सब हँसते-हँसते मेले की खुशी में रवाना हो गये। सबने अपने-अपने साथी बना लिये और बातचीत, हँसी-ठट्ठा करते चलने लगे। मैं इस पार्टी में नवागन्तुक था। मेरा कोई साथी न बना। उस समय मेरी दृष्टि उस पहाड़ी कुली पर गयी, जो मजे से सिर पर फलों की टोकरी लिये चला जा रहा था। मैंने उसे अपना साथी बना लिया और धीरे-धीरे ऐसा सान पर चढ़ाया कि वह खुल गया। यहाँ तक कि जब मैंने उससे कहा, 'यार कोई पहाड़ी गीत ही सुनाओ,' तो उसने

ऊँचे स्वर में तान छेड़ी :

तेरे दरदे वो मोहना
तेरे दरदे
बोल, गाला मेरा कट्टया
पैतिये करदे

सँजोली को जाने वाली केलुओं से ढँकी हुई टेढ़ी-मेढ़ी सड़क, पहाड़ी गीत, सुरीला और पंचम तक उठ जाने वाला कंठ—सब झूम कर रह गये ।

## तीन

पण्डित तेजभान पार्टी की जान थे। उन में मज़ाक करने और दूसरों के मज़ाक को सहने की शक्ति पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी। किसी ज़िन्दादिल के बिना पार्टी पार्टी ही कहाँ कही जा सकती है? रस के बिना ईख को ईख कौन कहेगा? हमारी पार्टी भी भूखे नीरस लोगों का गिरोह न थी। उसमें अधिकांश लोग—ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है—इसी मत के अनुयायी थे। पण्डित तेजभान इस पार्टी के नायक थे। लम्बे-चौड़े छः फ़ुट तीन इंच के जवान, पगड़ी बाँधते तो किसी रियासत के राजा मालूम होते, पर यारों के लिए वे महज़ विनोद का सामान थे। सब उनकी हँसी उड़ाने में मस्त, सब उनको परेशान करने के दरपै। और वो ऐसे कि किसी की बात का ठीक उत्तर दे रहे हैं, किसी के व्यंग्य को सुना-अनसुना कर रहे हैं और किसी के प्रहार का जब जवाब नहीं दे पाते तो एक ठहाका छोड़ देते हैं। और यह ठहाका—यह भी एक हथियार से कम नहीं। जब वे निरुत्तर हो कर बात का रुख पलटना चाहते हैं तब ठहाका मार देते हैं और वह भी साधारण ठहाका नहीं। उनका ठहाका अपनी विशेषताएँ रखता है और इसका भी एक छोटा-सा इतिहास है।

पण्डित तेजभान का ठहाका सारे सेक्रेटेरिएट में प्रसिद्ध है। वे एक बार जब हँसते हैं तब हँसते ही चले जाते हैं, उस वक्त उनकी आँखें चढ़ जाती हैं, और मुँह इस तरह खुल जाता है कि कंठ तक दिखायी देता है। सिर को वे ऊपर उठा लेते हैं। प्रायः हँसते समय उनकी पगड़ी ने धरती पर गिर कर इस

ड़मपन के विरुद्ध ज़बर्दस्त प्रोटेस्ट किया है।
यारों को इसमें भी मज़ाक की सूझती है। एक बार का
ज़िक्र है—वे इस प्रकार जब हँसने लगे तब लाला जी ने उनके
मुँह में ईसबगोल का छिलका फेंक दिया। वह इस भाँति तालू
और हलक के साथ चिपका कि सन्ध्या तक वे उसे नीचे उतारने
का प्रयत्न करते रहे, पर वह नहीं उतरा। उन्होंने दो-चार
बार पानी भी पिया, पर नीचे खिसकने की जगह वह और फूल
गया। फिर उन्होंने इस बदमज़ाकी पर जो दार्शनिक भाषण
लाला जी को पिलाया, वह सुनने से ही सम्बन्ध रखता था।
वास्तव में पण्डित तेजभान को 'दर्शन' का भी दौरा होता है।
ऐसा ही दौरा तब हुआ, जब 'प्रास्पैक्ट हिल' की एक पार्टी में
ठहाका लगाते समय उनके मुँह में रंग फेंक दिया गया था
और ज्यों-ज्यों वे पानी पी-पी कर कुल्ले करते थे, दाँत और
मुँह नीले होते जाते थे। उस वक्त इस तरह के भोंडे मज़ाक
के विरुद्ध उन्होंने जो भाषण दिया, वह आज तक मुझे स्मरण
है। उसमें पण्डित जी ने फ़तवा दे दिया कि उनके सब मित्र
हास्य-रस के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। खैर उनके इ
भाषणों का उनके मित्रों पर उतना ही प्रभाव पड़ता है, जित
तूती की आवाज़ का नक्कारखाने में, क्योंकि ज्योंही वे पि
—सी प्रकार मुँह खोले, सिर ऊपर को उठाये, आँखें बन्द कि
सते हैं यार लोग फिर ऐसी ही कोई हरकत कर बैठते हैं

बहुतेरा तबियत की नासाजी का रोना रोया, पर सुनता कौन ? घसीट ही लाये गये । हँसते-हँसाते पार्टी कुफ़री पहुँची । रास्ते में वर्षा होने लगी थी । शिमले में वर्षा का क्या ठिकाना और विशेषकर जून-जुलाई के महीनों मे, तड़ातड़ पड़ने लगती है । उस दिन कुछ ओले भी पड़े थे, शीत में वृद्धि हो गयी थी । कुफ़री पहुँच कर पार्टी ने वहाँ सराय में डेरा डाल दिया । नौ मील चल कर कुफरी की सैर को आने वालों के लिए यह सराय सर्दी में ठिठुरते हुए के लिए लिहाफ से कम नहीं । बरसातियाँ उतार दी गयीं । छतरियाँ निचुड़ने के लिए टाँग दी गयीं और 'डंकी' खेली जाने लगी । ताश के इस खेल में लाला जी को खूब निपुणता प्राप्त है । सदा वे ही सबसे पहले जीतते हैं । उस दिन पण्डित तेजभान की जो शामत आयी तो आप 'डंकी' बन गये । लाला जी ने यह सजा तजवीज की कि नाक पर रुपया रख कर एक कंकड़ी ऊपर को इस तरह उछाली जाय कि उससे रुपये का निशाना हो जाय । यह न करना हो तो एक रुपया पार्टी के फंड में दिया जाय । पण्डित जी ने बीसियों तरह की फ़िकरेबाजी सुनते हुए रुपया दे दिया । नाक या आँख कौन तुड़वाता ? इस पर मालूम होता है, लाला जी को शरारत सूझी । उन्होंने कहा, "भाई, इजारबन्द अथवा नेकर की पेटी में कीफ़[1] रख कर ऊपर को मुँह कर, कंकड़ी को ऐसे उछालो कि वह कीफ़ में गिरे । जिसे सफलता मिले उसे इनाम दिया जाय ।"

इनाम का नाम सुन कर पण्डित जी बोल उठे, "क्या इनाम ?"

लाला जी ने कहा, "सब लोग कोशिश करें । जो असफल रहें, वे आठ-आठ आनें दें । इस तरह जो रकम इकट्ठी हो जाए—

1. फुनेल, जिससे बोतल इत्यादि में तरल पदार्थ

सफल रहने वालों में बराबर-बराबर बाँट दी जाय।" र यह कहते हुए लाला जी ने जानकीनाथ को आँख से शारा किया।

प्रस्ताव बेहद दिलचस्प था। पण्डित जी बोले, "यहाँ कीफ़ कहाँ से आयेगी?"

महता ने कहा, "पिछले दिनों मैंने दुकानदार के यहाँ पड़ी देखी थी। यह कह कर वे दुकानदार से छोटी-सी कीफ़ ले आये। तब पण्डित जी ने एक लम्बा ठहाका छोड़ कर इस प्रस्ताव को पास कर दिया और इतनी देर में लाला जी और महता साहब में आँखों-आँखों इशारे हो गये।

सबसे पहले लाला जी ने अपनी नेकर में कीफ़ रख कर कंकड़ी फेंकी। वह उनकी नाक पर इस ज़ोर से लगी कि आँखों से पानी निकल आया। सब लोग हँसने लगे और पण्डित जी तो बहुत देर तक ग्रामोफ़ोन बने रहे। लाला जी ने तत्काल आठ आने निकाल कर पण्डित झंडालाल के हाथ में दे दिये, जो सदा ऐसे मौकों पर कोषाध्यक्ष का कर्तव्य निभाते थे। इसके बाद सबने बारी-बारी कोशिश की। सब असफल रहे। केवल रामभरोसे किसी तरह सफल हो गये। उन्होंने कंकड़ी जब फेंकी तो कोई आशा ही नहीं थी कि वह कीफ़ तो क्या उनके सि पर भी गिरेगी, पर वे पीछे को कुछ ऐसे भागे कि वह कीफ़ ही गिरी। उस वक्त सबने तालियाँ पीटीं। बाईस आदमि की पार्टी थी। दस रुपया जुर्माना आ चुका था। केवल पण्डि तेजभान जी रह गये थे। यदि वे जीत गये तो क्या कहं पाँच रुपये ठस से उनके हो गये। उस दिन वर्षा और ठ कारण उन्होंने चूड़ीदार पायजामा पहन रखा था। झट कमीज़ कसी, इज़ारबन्द और कमीज़ों के मध्य में कीफ़ और क़हक़हा लगा कर ऊपर को मुँह करके ज्यों ही

फेंकने लगे, तभी जानकीनाथ ने (जो पहले से ही तैयार थे) लोटा भर चश्मे का पानी भर्र-भर्र कीफ में उड़ेल दिया। एक तो बर्फ से भी ठंडा पानी, फिर चूड़ीदार पायजामा, न उतारा जा सके, न पहना जा सके। दोनों पाँवों से पानी बह रहा था, फब्तियों-पर-फब्तियाँ कसी जा रही थीं और पण्डित जी थे कि पूरे जोश से अपना दार्शनिक भाषण झाड़ रहे थे। इसके बाद उन पर क्या गुज़री और वे किस प्रकार ठिठुरते-ठिठुरते नौ मील चल कर कमुमटी पहुँचे, यह एक लम्बी कहानी है।

अजीब बात तो यह है कि ऐसे समय में दैव भी पण्डित जी का विरोधी बन जाता था। शायद उसे भी ऐसे लाल-बुझक्कड़ से मज़ाक करने में आनन्द आता था। एक बार का ज़िक्र है कि लाला जी, जो पण्डित तेजभान के अभिन्न हृदय मित्र होते हुए भी सब शरारतों के बानी होते थे, जानकीनाथ के साथ कार्यवश स्टेशन को जा रहे थे। मार्ग में एक कुली ने, जो खुशबूदार आमों का टोकरा उठाये हुए था, उनके हाथ में काग़ज का एक पुर्ज़ा दिया ताकि वे उन महाशय का पता बता दें, जिनका नाम उस पर लिखा था। पुर्ज़ा देखते ही लाला जी की आँखें मुस्करा उठीं। हँसते हुए बोले, "हम तो इधर ही जा रहे थे।" फिर महता जानकीनाथ की ओर देख कर कहने लगे, "लो पण्डित जी, कष्ट से बच गये। यह आपके आम आ रहे हैं। आप इस काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दीजिए और आमों का टोकरा ले जाइए। आपके दोस्त ने आपको स्टेशन पर आने का कष्ट न दे कर स्वयं ही आम आपके घर भेज दिये। आप कह भी तो यही आये थे कि यदि मैं वक़्त पर न पहुँचूं तो कृपा कर टोकरा मेरे घर भिजवा देना, चलो इस तकलीफ़ से बच गये, नहीं तो पूरा डेढ़ घंटा खराब हो जाता।" और फिर जानकीनाथ को चुप खड़े देख कर आँख का इशारा

वह सफल रहने वालों में बराबर-बराबर बाँट दी जाय ।"
और यह कहते हुए लाला जी ने जानकीनाथ को आँख से
इशारा किया ।

प्रस्ताव बेहद दिलचस्प था । पण्डित जी बोले, "यहाँ
कीफ़ कहाँ से आयेगी ?"

महता ने कहा, "पिछले दिनों मैंने दुकानदार के यहाँ
पड़ी देखी थी । यह कह कर वे दुकानदार से छोटी-सी कीफ़
ले आये । तब पण्डित जी ने एक लम्बा ठहाका छोड़ कर इस
प्रस्ताव को पास कर दिया और इतनी देर में लाला जी और
महता साहब में आँखों-आँखों इशारे हो गये ।

सबसे पहले लाला जी ने अपनी नेकर में कीफ़ रख कर
कंकड़ी फेंकी । वह उनकी नाक पर इस ज़ोर से लगी कि आँखों
से पानी निकल आया । सब लोग हँसने लगे और पण्डित जी
तो बहुत देर तक ग्रामोफ़ोन बने रहे । लाला जी ने तत्काल
आठ आने निकाल कर पण्डित झंडालाल के हाथ में दे दिये, जो
सदा ऐसे मौकों पर कोषाध्यक्ष का कर्तव्य निभाते थे । इसके
बाद सबने बारी-बारी कोशिश की । सब असफल रहे । केवल
रामभरोसे किसी तरह सफल हो गये । उन्होंने कंकड़ी जब फेंकी
तो कोई आशा ही नहीं थी कि वह कीफ़ तो क्या उनके सिर
पर भी गिरेगी, पर वे पीछे को कुछ ऐसे भागे कि वह कीफ़ मे
ही गिरी । उस वक्त सबने तालियाँ पीटीं । बाईस आदमिय
की पार्टी थी । दस रुपया जुर्माना आ चुका था । केवल पण्डि
तेजभान जी रह गये थे । यदि वे जीत गये तो क्या कहने
पाँच रुपये ठस से उनके हो गये । उस दिन वर्षा और ठंड
कारण उन्होंने चूड़ीदार पायजामा पहन रखा था । झट उ
कमीज़ कसी, इज़ारबन्द और कमीज़ों के मध्य में कीफ़ र
और क़हक़हा लगा कर ऊपर को मुँह करके ज्यों ही कं

फेंकने लगे, तभी जानकीनाथ ने (जो पहले से ही तैयार थे) लोटा भर चश्मे का पानी भर्र-भर्र कीफ़ में उड़ेल दिया। एक तो बर्फ़ से भी ठंडा पानी, फिर चूड़ीदार पायजामा, न उतारा जा सके, न पहना जा सके। दोनों पाँवों से पानी वह रहा था, फब्तियों-पर-फब्तियाँ कसी जा रही थी और पण्डित जी थे कि पूरे जोश से अपना दार्शनिक भाषण झाड़ रहे थे। इसके बाद उन पर क्या गुज़री और वे किस प्रकार ठिठुरते-ठिठुरते नौ मील चल कर कसुमटी पहुँचे, यह एक लम्बी कहानी है।

अजीब बात तो यह है कि ऐसे समय में दैव भी पण्डित जी का विरोधी बन जाता था। शायद उसे भी ऐसे लाल-बुझक्कड़ से मज़ाक करने में आनन्द आता था। एक बार का ज़िक्र है कि लाला जी, जो पण्डित तेजभान के अभिन्न हृदय मित्र होते हुए भी सब शरारतों के बानी होते थे, जानकीनाथ के साथ कार्यवश स्टेशन को जा रहे थे। मार्ग में एक कुली ने, जो खुशबूदार आमों का टोकरा उठाये हुए था, उनके हाथ में कागज़ का एक पुर्ज़ा दिया ताकि वे उन महाशय का पता बता दें, जिनका नाम उस पर लिखा था। पुर्ज़ा देखते ही लाला जी की आँखें मुस्करा उठी। हँसते हुए बोले, "हम तो इधर ही जा रहे थे।" फिर महता जानकीनाथ की ओर देख कर कहने लगे, "लो पण्डित जी, कष्ट से बच गये। यह आपके आम आ रहे हैं। आप इस कागज़ पर हस्ताक्षर कर दीजिए और आमों का टोकरा ले जाइए। आपके दोस्त ने आपको स्टेशन पर आने का कष्ट न दे कर स्वयं ही आम आपके घर भेज दिये। आप कह भी तो यही आये थे कि यदि मैं वक़्त पर न पहुँचूँ तो कृपा कर टोकरा मेरे घर भिजवा देना, चलो इस तकलीफ़ से बच गये, नहीं तो पूरा डेढ़ घंटा खराब हो जाता।" और फिर जानकीनाथ को चुप खड़े देख कर आँख का इशारा करते

, "तो फिर अब खड़े काहे को हो ? मैं तो जाता हूँ माल को । उन वकील साहब से मिल आऊँगा । अब तुम जानो र तुम्हारे आम ।"

महता जानकीनाथ, जो ऐसे मामलों में लाला जी के दायें थ थे, झट सब मामला समझ गये । आँखों-आँखों में सब कुछ य हो गया । उन्होंने काग़ज़ पर हस्ताक्षर किये और कुली से अपने साथ आने को कहा ।

लाला जी ने माल-रोड को मुड़ते हुए हँस कर कहा, "क्यं. न हो भाई ! स्टेशन के बाबू मित्र हों और इतना भी आराम न रहे ।" यह कह कर वे मानों उछलते हुए माल रोड की ओर चल दिये ।

पण्डित तेजभान बड़ी मुद्दत से इस बात का ज़िक्र कर रहे थे कि सहारनपुर से उनके साले साहब बढ़िया आमों का एक टोकरा भेज रहे हैं, लेकिन बदबख़्ती देखिए कि जब आम आये तो उनकी सुगन्ध भी न मिली, क्योंकि लाला जी के पहुँचते ही महता साहब के मकान में सब मित्रों को निमन्त्रण दिया गया और बड़े मज़े से दावत उड़ायी गयी । जब आम समाप्त हो चुके तब पण्डित जी भी घबराये हुए पहुँच गये । जिस समय निमन्त्रण दिया गया था, वे घर पर नहीं थे । आते ही इधर उधर देखे बिना बोले, "यार, बुरा हुआ । किसी ने आमों मार्ग में ही हथिया लिया । मुझे कुछ काम था, इसलिए बि स्टेशन पर दे कर काम से चला गया । अपने घर का पता दे माल बाबू से कह आया था कि टोकरा मेरे घर पहुँचा इतने में मैं घर पहुँच जाऊँगा । जब घर आया, मालूम कि कुली आया ही नहीं । काफ़ी प्रतीक्षा की, फिर भागा स्टेशन पर पहुँचा । मालूम हुआ, रास्ते में ही कोई कु ठग कर मेरे हस्ताक्षर करके टोकरा ले गया है ।'

भोलानाथ ने कहा, "यानी तुमने हस्ताक्षर भी किये और तुम्हें आम भी न मिले। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि सोते में ही तुमने दस्तखत कर दिये हों और तुम्हें ऊँघते देख कर कुली टोकरा अपने साथ ही लेता गया हो।"

इस पर फिर ठहाका पड़ा। झंडालाला बोले, "चलिए, यह अनिवार्य सैर हो गयी। दस मील का चक्कर पड़ गया होगा। आप बाहर निकलने से जो घबराते हैं, उसी का यह दण्ड परमात्मा ने आपको दिया है।"

सब फिर हँसने लगे। इतनी देर में पण्डित जी मामला भाँप गये। उन्हें महत साहब पर कुछ शक था। उनकी लिखावट वे भली-भाँति पहचानते थे और महता साहब नीचा सिर किये हुए आम की गुठली ऐसे चूस रहे थे जैसे रस की अन्तिम बूँद तक चूस जाने में ही उनके जीवन-मरण का प्रश्न निहित हो। महता साहब से दृष्टि उठा कर जब पण्डित जी ने लाला जी की ओर देखा था तो उन्होंने चुपके से महता साहब की ओर संकेत कर दिया। जानकीनाथ ने भी देख लिया, मुस्करा दिये और उस टोकरे की ओर, जिसमें गुठलियाँ और छिलके पड़े थे, इशारा करके बोले कि उठा ले जाओ।

उसी समय लाला जी ने कहा, "खुश-किस्मत हो तेज-भान! वक़्त पर ही पहुँच गये। यह एक आम बच गया है। लो, स्वाद तो चक्खो!" यह कहते हुए उन्होंने आम की फाँकें करनी शुरू कीं और जैसे बेखुदी में एक-एक फाँक सबको बाँटने लगे। जब गुठली हाथ में रह गयी तब बोले, "अरे! सब बँट गया, मैं तुमसे बातें करने में ही मग्न रहा। अच्छा यह गुठली ही देख लो, हिस्सा तो यह मेरा होता है, लेकिन, खैर तुम्हारे लिए अब कौन-सी कुर्बानियाँ नहीं कीं और फिर गूदा तो सारा इसी में है।"

पण्डित जी लहू के घूंट भर रहे थे । उनकी आँखों में पानी छलक आया । एक चोरी, दूसरे सीनाज़ोरी ! आम का स्वाद चखने को जी तो चाहा, पर जैसे चोरों से लुटा हुआ निराश व्यक्ति उनके हाथों किसी जेब में बचे रह गये चन्द पैसे भी क्रोध में उनके सामने फेंक देता है कि यह भी ले जाओ, उसी तरह बौखला कर पण्डित जी ने कहा, "इसे तुम्हीं रक्खो, इतनी बड़ी कुर्बानी क्यों करते हो !" तब—'तुम्हारी किस्मत में इन सुगन्धित, सुस्वादु आमों का मज़ा चखना लिखा ही नहीं,' यह कहते हुए लाला जी ने गुठली को चूसना शुरू कर दिया ।

उस समय फिर पण्डित जी का दार्शनिक भाषण आरम्भ हुआ । दावत की हक़ीक़त खुलने पर यारों ने खूब क़हक़हे लगाये । वे सब अभी तक यही समझे हुए थे कि बच्चे की वर्ष-गाँठ पर महता साहब ने यह पार्टी दी है ।

पण्डित जी के क्रोध का सब नज़ला लाला जी पर गिरा । लाला जी ने झट उठ कर पण्डित जी के कान में कुछ कहा, जिससे वे कुछ शान्त-से दिखायी देने लगे और महता साहब को बदले की धमकी देते हुए लाला जी के साथ चले गये ।

यहाँ से इस नाटक का दूसरा अंक शुरू होता है । लाला जी ने पण्डित जी के सिर की कसम खा कर उन्हें यह विश्वास दिला दिया कि यह सब बदमाशी महता जानकीनाथ की है । "तुमने देखा नहीं लिखावट महता ही की थी," वे बोले, "मैं तो जैसे दूसरे गये, वैसे निमंत्रण पाने पर चला गया ।"

पण्डित जी को पहले ही महता साहब की लिखावट पर सन्देह था, इसलिए लाला जी की बातों में उन्हें सत्य की गन्ध मिली । इसके साथ ही लाला जी ने महता साहब को बुरा-भला कह कर उनसे बदला ले देने का यकीन भी पण्डित जी को दिला दिया ।

इसके बाद एक दिन सन्ध्या समय लाला जी ने पण्डित तेजभान के कान में कहा, "लो भई, अब तुम्हारे बदला लेने का वक्त आ गया है।"

"कैसे ?"

"आज महता ने मुझे बताया है कि उसके मित्र देहरादून से उसके नाम आम भेज रहे है। उसने मुझे बिल्टी (रेल की रसीद) भी दिखायी है। बस वह आम मँगाये, मैं उसे अपने कमरे में बुला कर बातों में लगा रक्खूँ, तुम उसके कमरे से टोकरा उठवाओ और ब्राह्मण को नाऊ बन जाओ।"

पण्डित जी की आँखे चमक उठी। लाला जी के हाथ पर हाथ मारते हुए हर्ष के उन्माद मे उन्होंने कहा, "टिट फॉर टैट !—जैसे को तैसा !" और इतना लम्बा क़हक़हा लगाया कि पहले कभी न लगाया होगा। लाला जी की ओर से उनके दिल पर जो घाव थे, वे सब भर गये। प्रसन्नता से बोले, "ऐसे टोकरा उड़े कि बच्चा जी के देवताओं को भी पता न लगे।"

लाला जी ने कहा, "बस, बत्ती गुल और पगड़ी ग़ायब। वह हमारे कमरे में और आमों का टोकरा तुम्हारे घर !"

बात तय हो गयी कि लाला जी महता को अपने कमरे में बुला लेंगे और पण्डित तेजभान उसके कमरे से टोकरा उठा कर घर ले जायेंगे। इस शर्त पर कि कम-से-कम एक चौथाई आम लाला जी के घर अवश्य भेजे जायें।

उस दिन के बाद पण्डित तेजभान रोज दफ़्तर में लाला जी के कान में कुछ पूछने लगे। एक दिन लाला जी ने बताया कि टोकरा आ गया है और महता साहब के कमरे में पड़ा है। तुम कुली का प्रबन्ध कर आओ। तब मैं महता को अपने कमरे में बुला लूंगा। पण्डित तेजभान कमरे से निकलते समय हवा

थे, मानो उनके हाथ कोई निधि आ गयी हो। दफ़्तर के बाहर एक कुली भी जाता हुआ मिल गया। उसे वहाँ खड़े रहने का आदेश दे कर उन्होंने लाला जी को सूचना दी कि कुली का प्रबन्ध हो गया है और फिर अपने कमरे में जा कर गम्भीरता से बैठ गये। मन में लड्डू फूट रहे थे, काम में कैसे जी लगता ? बेसब्री उन्हें महता जी के कमरे के सामने ले आयी। वे अभी काम कर रहे थे, पण्डित जी ने इधर-उधर निगाह दौड़ायी। कोने में एक टोकरा रक्खा था। मन की ख़ुशी को मन ही में दबाते हुए वे फिर अपने कमरे में जा बैठे। उन्हें एक-एक पल एक-एक वर्ष के समान बीत रहा था। फिर महता साहब के कमरे की ओर गये। वे अब भी बैठे काम कर रहे थे। पण्डित जी दिल-ही-दिल में लाला जी को गालियाँ देने लगे, "ये मेरा मज़ाक उड़ा रहे हैं और कुछ नहीं। मुझे उल्लू बनाना चाहते हैं !"—उसी समय उन्होंने देखा, लाला जी का चपरासी आया और महता साहब उसके साथ हो लिये। पण्डित जी कन्नी कतरा गये। उनसे आँख न मिला सके।

जब महता साहब निकल गये तब पण्डित जी भाग कर कुली को बुला लाये। उसका नम्बर लिया, धड़कते हुए दिल के साथ टोकरा उठवाया, अपना पता दिया और उसे रवाना करके अपने कमरे में जा बैठे। ऐसे चुप, जैसे साँप सूंघ गया हो। पूरी तरह गम्भीर बने बैठे थे, पर मन का आह्लाद चेहरे पर फूटा पड़ रहा था। दिल में बीसियों मनसूबे बाँधे जा रहे थे—क्यों न अभी सिर दर्द का बहाना करके खिसक जायँ और देहरादूनी आमों का स्वाद चक्खें। नहीं, यह ठीक नहीं, कोई सिर हो जायेगा। यह महता भी ख़ूब याद रक्खेगा। चला था तेजभान से मज़ाक करने। मेरा टोकरा तो ख़ैर आध मन का ही था। यह तो एक मन से कम न होगा। आम भी अच्छे मालूम होते

है । क्यों न हो ! देहरादूनी हैं ।

इसी तरह की वीसियों कल्पनाओं में उलझे पण्डित तेजभान प्रकट बड़ी तन्मयता से काम में लगे थे । जब महता साहब ने बिलकुल समीप आ कर उनकी ठोढ़ी पकड़ कर मुंह ऊपर उठाया और बोले, "वाह कैसे काम में लगे हो, जैसे यहीं शहीद हो जाओगे ?" तो और भी गम्भीर हो कर पण्डित जी ने कहा— "नहीं, नहीं । आओ, आओ बैठो । यों ही आज ज़रा काम ज़्यादा है," यह कह कर उन्होंने महता साहब को कुर्सी दी ।

उनकी इस धूर्तता पर जल कर महता ने कहा, "मियां, सीधे हाथों टोकरा वापस कर दो । इन उड़नघाइयों से काम नहीं चलेगा ।"

पण्डित जी ने ऐसा मुंह बनाया, जैसे कोई समझ में न आने वाली बात सुन रहे हों । आंखें फैला कर और मुंह को तनिक-सा खोल कर हैरानी से बोले "क्या कहा ? टोकरा ! कैसा टोकरा ? किसका टोकरा ?"

"मेरा आमों का टोकरा और किसका टोकरा ? पक्का एक मन देहरादूनी आम थे । यों आसानी से हज़म न होंगे ।"

पण्डित जी ने आवाज में ज़रा सहानुभूति लाने का प्रयास करते हुए कहा, "किसने उठा लिया तुम्हारा टोकरा । ज़रा बैठो । कुछ ठीक तरह बताओ तो कुछ पता चले । मुझे तो कुछ खबर ही नहीं !" यह कहते हुए उन्होंने कुर्सी महता साहब के आगे खिसका दी ।

महता ने खड़े-खड़े ही कहा, "बात यह है कि आज देहरादून से मन पक्के आम आये थे । मैं घर भिजवाने को था कि लाला जी ने बुलवा भेजा । एक जरूरी काम था । वापस आया तब आम नदारद...."

यह कहते हुए महता साहब ने कुछ ऐसा निराश मुंह बनाया

कि पण्डित जी अपनी हँसी न रोक सके, क़हक़हा छोड़ कर बोले, "तुम्हारे साथ ऐसा ही होना चाहिए था। भगवान ने मेरा बदला चुका दिया।"

महता साहब जैसे गिड़गिड़ाते हुए बोले, "परमात्मा की सौगन्ध, उसमें मेरा ज़रा भी कुसूर न था। सब शरारत लाला जी की थी। मैं तो एक टूल (साधन) था—महज़ एक टूल।"

पण्डित तेजभान कुछ देर गम्भीर मुद्रा बनाये बैठे रहे, फिर अचानक बोले, "बताऊँ?" और महता साहब के कान के पास मुँह ले जा कर कहने लगे, "यह भी लाला जी की ही शरारत है, बस। मुझसे कसम ले लो। तुम्हारे आमों के आने का पता भी नहीं।"

"अच्छा उनसे पूछ देखता हूँ।" यह कहते हुए महता साहब मुँह लटकाये तेज़ी से बाहर निकल गये। जब बाहर बरामदे में उनके पैरों की चाप दूर होते-होते बिलकुल बन्द हो गयी, तब पण्डित तेजभान ने एक लम्बा क़हक़हा लगाया और कुर्सी में धँस गये। अब मालूम होगा बच्चा जी को, किस तरह दूसरे की चीज़ उड़ायी जाती है।

शाम को मित्रों ने बहुतेरा ज़ोर दिया कि बड़े शिमले तक हो आयें, पर पण्डित जी ने एक न सुनी। उनके मन में तो आमों को देखने की, उनका स्वाद चखने की लालसा थी। कहने लगे, "आज घर में तबियत खराब है, नौकर के हाथ कहलवा भेजा था कि जल्दी आना, सो भाई जा रहा हूँ। मन तो तुम्हारे ही साथ रहेगा, पर क्या किया जाय, मजबूरी है।" ऐसे ही पीछा छुड़ा कर पण्डित जी सरपट घर की ओर भागे। उसी तरह जैसे त्योहार की शाम को स्कूल से छुट्टी मिलने पर लड़के घर को भागते हैं।

घर में पैर रखते ही बड़े रोब से उन्होंने पत्नी से पूछा,

"उनकी पत्नी रात कहीं भाग गयी है न, थाने रिपोर्ट देने गये हैं।" और गम्भीर मुद्रा के साथ आप वहाँ से चले गये।

अपनी लड़की के बारे में ऐसी बुरी खबर सुन कर उन सरल हृदय वृद्ध के हाथ-पाँव फूल गये। यह तो भला हुआ कि पण्डित जी की यह बात एक दूसरे क्लर्क ने सुन ली और वह वापस भागते हुए वृद्ध को ले आया, नही तो उनके इस मज़ाक से सरदार बूटासिंह और उनके ससुर और घर वालों को कितनी परेशानी का सामना करना पड़ता, इसका अनुमान सहज ही मे किया जा सकता है।

एक बार ऐसे ही किसी साहब ने रास्ते में पण्डित तेजभान से लाला जी के बारे में पूछा, "सुनाओ पण्डित जी, कई दिनों से लाला जी को नही देखा, कहाँ रहते हैं वे आजकल, उनके घर तो कुशल है।"

श्मसान जैसा मुंह बना कर आपने कहा, "आपको नही मालूम ?"

किसी अशुभ की आशंका करते हुए उन्होंने केवल आँखें फैला दी।

"उनके पिता का देहान्त हो गया।"

"कब ?"

"चौथा भी हो चुका।"

वह महाशय सब्ज़ी लिये घर जा रहे थे। यह बात सुन कर वहीं से लाला जी के घर को रवाना हो पड़े। वहाँ जा कर क्या हुआ और उन्हें अपने बच्चों के साथ हँसते-हँसाते 'कैरम' खेलते देख कर वे महाशय कैसे सकुचाये, यह बात बखूबी समझी जा सकती है।

लाला जी और पण्डित जी में तो बचपन से चली आती है। कॉलिज में दोनों इकट्ठे पढ़ते थे। वहाँ होस्टल में रात को

पण्डित जी ने अन्तिम रस्सी काटते हुए कहा, "तुम्हारी नाक सड़ गयी है। देहरादूनी आम हैं, देहरादूनी !"

और जब पार्सल खुला तब दिमाग भन्ना गया। कमरे में सड़ाँध फैल गयी। ऊपर दो आने पंसेरी वाले सड़े-गले आम थे और नीचे वह सब कूड़ा-करकट था, जो महता साहब ने जमादार से कह कर भरवाया था।

पत्नी नाक पर हाथ रक्खे और 'देख लिये तुम्हारे देहरादूनी आम,' कहती हुई तिनकती दूसरे कमरे में चली गयी और पण्डित जी महता साहब और लाला जी को हज़ार-हज़ार मल्लाहियाँ सुनाते और शून्य में ही अपना दार्शनिक भाषण झाड़ते मकान से बाहर निकल गये ताकि किसी को दस-बारह आने दे कर उस मन भर कूड़ा-करकट के अम्बार को कहीं दूर फिकवायें।

बाहर महता साहब और लाला जी के सिवा बाकी स[...] मित्र-मंडली और मासूमियत दिखाने और जले पर नम[...] छिड़कने के लिए मौजूद थी।

किन्तु यह चित्र का एक रुख है। पण्डित जी भी मौका मि[...] पर नहीं चूकते। उनका मज़ाक भी प्रायः असह्य होत[...] अन्तर केवल इतना है कि जिसे वे मज़ाक करें, उसके [...] अनेकों होते हैं, परन्तु उनसे सहानुभूति के शब्द वाला कह[...] नहीं होता। जो भी आता है, जले पर नमक छिड़क जा[...]

एक बार लाहौर की बात है, आप दफ़्तर में अप[...] के बाहर टहल रहे थे कि एक सफ़ेद-रीश[1] बुज़ुर्ग जो बूटासिंह के ससुर थे, उन्हें मिलने दफ़्तर में आये [...] तेजभान को बाहर खड़े देख कर उन्होंने पूछा, "सर[...] सिंह कहाँ होंगे।"

१. श्वेत दाढ़ी वाले

"उनकी पत्नी रात कहीं भाग गयी है न, थाने रिपोर्ट देने गये हैं ।" और गम्भीर मुद्रा के साथ आप वहां से चले गये ।

अपनी लड़की के बारे मे ऐसी बुरी खबर सुन कर उन सरल हृदय वृद्ध के हाथ-पाँव फूल गये । यह तो भला हुआ कि पण्डित जी की यह बात एक दूसरे क्लर्क ने सुन ली और वह वापस भागते हुए वृद्ध को ले आया, नही तो उनके इस मजाक से सरदार बूटासिंह और उनके ससुर और घर वालों को कितनी परेशानी का सामना करना पड़ता, इसका अनुमान सहज ही मे किया जा सकता है ।

एक बार ऐसे ही किसी साहब ने रास्ते में पण्डित तेजभान से लाला जी के बारे में पूछा, "सुनाओ पण्डित जी, कई दिनों से लाला जी को नही देखा, कहां रहते हैं वे आजकल, उनके घर तो कुशल है ।"

श्मसान जैसा मुँह बना कर आपने कहा, "आपको नहीं मालूम ?"

किसी अशुभ की आशंका करते हुए उन्होंने केवल आँखें फैला दी ।

"उनके पिता का देहान्त हो गया ।"

"कब ?"

"चौथा भी हो चुका ।"

वह महाशय सब्जी लिये घर जा रहे थे । यह बात सुन कर वहीं से लाला जी के घर को रवाना हो पड़े । वहाँ जा कर क्या हुआ और उन्हें अपने बच्चों के साथ हँसते-हँसाते 'कैरम' खेलते देख कर वे महाशय कैसे सकुचाये, यह बात बखूबी समझी जा सकती है ।

लाला जी और पण्डित जी में तो बचपन से चली आती है । कॉलेज में दोनों इकट्ठे पढ़ते थे । वहाँ होस्टल में रात को

बड़ा शोर होता था। नित नये मज़ाक होते, एक-दूसरे को तंग करने की नित नयी तरकीबें निकाली जाती थीं। आज सब के जूतों का एक-एक पाँव गुम है, तो कल सब की ऐनकें ग़ायब। एक बार किसी ने मज़ाक की नयी तर्ज़ निकाली—एकदम मौलिक ! वह यूँ कि एक लड़के के सिरहाने रखी हुई सुराही उठा कर उसके पानी में रंग मिला दिया और उसे बिस्तर पर रख दिया। ज्योंही कुछ देर बाद उस छात्र ने करवट बदली, सब पानी घर-घर करके बिस्तर पर बह गया और वह छात्र सिर पीटता रह गया। इसके बाद यह रस्म आम हो गयी। हर रात किसी-न-किसी छात्र का बिस्तर भिगो दिया जाता। एक रात लाला जी और पण्डित जी को एक ही समय पर लघुशंका हुई। पहले लाला जी फ़ारिग हो आये और जब पण्डित जी लैटरिन गये तो लाला जी को शरारत सूझी। होस्टल में एक सड़ियल मिजाज़ छात्र भी रहते थे। आज तक किसी ने उनसे मज़ाक का साहस न किया था, जो मज़ाक सह ही न सके उससे दिल्लगी करना बेकार है। रोज़ यही शरारत होने से छात्रों ने सुराहियाँ ही रखना छोड़ दिया था। एक वे महाशय अपनी अकड़ में सुराही रखा करते थे। लाला जी ने चुपके-से उसकी सुराही उठा कर उनके सरहाने रख दी और जा कर लेट रहे। जब पण्डित तेजभान इज़ारबन्द बाँधते हुए आये तो लाला जी ने एक कंकर उठा कर उस लड़के को दे मारा। वह हड़बड़ा कर उठा। सुराही उलट गयी। बिस्तर भीग गया। एक तो कच्ची नींद में जागने का रंज, दूसरे बिछौने के भीग जाने का शोक, और विषैली तबियत, उसने आव देखा न ताव, उठ कर पण्डित जी के मुँह पर इतने ज़ोर से थप्पड़ मारा कि पण्डित जी का दिमाग़ चकरा गया।

"पाजी कहीं का, रोड़ा फेंक कर इज़ारबन्द कसने लगा

है।" इधर पण्डित जी बदहवास-से, भौंचक्के-से खड़े थे, उधर लाला जी के पेट में बल पड रहे थे।

पण्डित जी चाहे कैसे कड़ियल जवान हैं, लेकिन उन्होंने किसी पर हाथ उठाया हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। भीगी बिल्ली बने सब कुछ सह गये। हाँ, लाला जी के साथ कई रोज़ तक न बोले।

## चार

छोटे शिमले से सी-पी नौ मील दूर है, यह मैंने सुन रखा था और यह भी सुना था कि मार्ग सीधा-सरल, उतार-चढ़ाव से रहित, सुन्दर और सुरम्य है, किन्तु कभी इन नौ मीलों को, जो लम्बे होते हुए भी अपने सुन्दर दृश्यों के कारण प्रिय के मिलन-दिवस की तरह छोटे थे, तय करने का सौभाग्य नहीं मिला था। सी-पी के मेले ने मुद्दत से उस सड़क और शिमले के उस ओर के इलाक़े का नज़ारा करने की मेरी सोयी हुई इच्छा को जगा दिया।

छोटे शिमले से चले तो सँजौली तक कुछ चढ़ाई रही, लेकिन सड़क का यह टेड़ा-मेढ़ा ऊँच-नीच टुकड़ा भी सुरम्यता में कम न था। एक ओर जाकू (पहाड़) मस्त हाथी की तरह लेटा था, दूसरी ओर गहरी खड्ड, जैसे उनकी महानता के चरणों में शीश नवा रही थी, धूप ख़ूब तेज़ थी, किन्तु केलू के लम्बे-ऊँचे सघन छतनार पेड़ गर्म हवा का सारा ताप हर रहे थे। हल्की प्रसन्न हवा धीरे-धीरे रमक रही थी। रास्ते में सँजौली के कुछ ही इधर दृश्य अत्यन्त मनोरम, किन्तु आतंक-पूर्ण था। बाईं ओर पहाड़ एकदम सीधा और ऊँचा खड़ा था। दाहिनी ओर बहुत गहरी घाटी थी और मध्य में थी सड़क। ऊपर देखो तो सीधी ऊँचाई से हृदय पर आतंक छा जाय, नीचे देखो तो गहराई को देख कर मन में हौल पैदा हो जाय। डाइनामाइट से काटे जाने पर पहाड़ में जो खराशें पड़ गयी थीं, उनसे पानी चू रहा था। हवा के हल्के झँकोरों से हिल-मिल जाने वाले बूँदों के बेपरवा कण इस स्थान को अत्यन्त शीतल बना रहे थे। मैंने अनायास कहा, "बड़ी सुन्दर जगह है!"

ीज निकालते । वहाँ यदि आप पहाड़ के निकट से देखें तो ापको बहुत से ऐसे चिह्न दिखायी भी पड़ेंगे, जैसे किसी ने हाड़ को खुरचा हो । ये किसी औज़ार के नहीं, वरन उन छेदों के हैं, जिनमें डाइनामाइट की वत्तियाँ रख कर पहाड़ को उड़ाया गया था । इसी डाइनामाइट के आविष्कार से करोड़ों रुपया पैदा करके नोवेल साहब एक स्थायी पुरस्कार की व्यवस्था कर गये हैं, जो भारत में कवि-सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर और प्रसिद्ध वैज्ञानिक रमन को मिल चुका है....।"

ला० गंडामल न जाने और कितनी देर तक नोवेल साहब तथा उनके पुरस्कार के सम्बन्ध में साथियों का ज्ञान-वर्धन करते रहे, पर मेरा ध्यान उधर से हट गया । सँजौली आ गयी थी । सामने जहाँ जाकू के गिर्द घूमने वाली सड़क वायीं ओर को घूमती थी, वहीं सड़क से एक रास्ता निकल कर घाटी के ऊपर से हो कर सँजौली के वीचों-वीच होता मशोवरे को जाता था । सामने घाटी के सिरे पर ऊपर से नीचे तक सँजौली के मकान बड़े खूबसूरत लग रहे थे ।

सँजौली शिमले की एक छोटी-सी वस्ती है । शिमले की घनी आवादी से तंग आये हुए लोग यहीं शरण पाते हैं । शिमले में एक सड़क जाकू के गिर्द घूमती हुई यहाँ पहुँचती है । इ चक्कर को 'जाकू राउंड' कहते हैं । कुल छै मील का चक्क पड़ता है । छोटे शिमले से जायें तो केवल चार मील चलने प ही सँजौली के दर्शन हो जाते हैं । यदि 'लक्कड़ बाज़ार' जायें तो दो मील के वाद सँजौली दिखायी पड़ जाती है । सिलसिले में यह वात उल्लेखनीय है कि जाकू के गिर्द घ वाली सड़क माल रोड से ही शुरू होती है और वहीं जा खत्म हो जाती है । चाहे किधर से जायें—छोटे शिमले अ लक्कड़ बाज़ार से—यदि आप पूरा छै मील का चक्कर ल

तो जहां से चले हैं, वहीं आ जायेंगे। हां, एक और चक्कर भी है, जो गिरजे के मैदान से शुरू हो कर वहीं आ कर समाप्त हो जाता है। इसे 'छोटा जाकू राउंड' कह सकते हैं, किन्तु जाकू का पूरा चक्कर छै मील का ही है। जाकू राउंड लगाने वाले सैर के शौकीन कुछ पल सँजौली में जरूर रुकते हैं।

सँजौली के बाजार में कुछ खा-पी कर और 'हंटले एण्ड पामर्स' के बिस्कुटों के तीन डिब्बे ले कर, जिनमें से एक रसास्वादन करते-करते ही समाप्त हो गया, हमारी पार्टी मशोबरे की ओर चली। क्योंकि सी-पी मशोबरे के नीचे घाटी में बसा है। कुछ ही दूर पर एक सुरंग मिली। यह सुरंग रेलगाड़ी की सुरंग की तरह अँधेरी नहीं, बल्कि इसमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक सफ़ेदी पोती गयी है और यात्रियों के सुविधा के लिए बिजली के लैम्प भी लगे हैं।

सुरंग में प्रवेश करते ही ठंडी हवा के एक मनोहारी झोंके ने हमारा स्वागत किया। प्रायः सबने अपनी टोपियां-पगड़ियां उतार लीं और एक-दो लम्बे सांस खींचे। शिमले में उन दिनों प्रायः सर्दी होती है, लेकिन दो-तीन दिन पहले वर्षा का एक तरेरा पड़ा था, इसलिए सुरंग की ठंडी हवा में उतना ही आनन्द मिला, जितना प्यासे को पानी पीने पर। इतनी चौड़ी, सुन्दर और साफ़ सुरंग शिमले में नहीं है। माल के नीचे लोअर बाज़ार को ईदगाह से मिलाने वाली सुरंग इससे लम्बी चाहे ज्यादा हो, पर इतनी चौड़ी और साफ़-सुथरी नहीं।

सुरंग से निकलते ही जब पीछे मुड़ कर देखा तो सिर पर एक रुंड-मुंड टीला दिखायी पड़ा। उसका एक बहुत बड़ा भाग बाहर को बढ़ा हुआ था, जैसे सुरंग से पार जाने वालों को 'गुड-बाई' कह रहा हो। यहां से सड़क यद्यपि कई जगह मुड़ती है, लेकिन इसमें ऊँचाई-नीचाई नहीं। बड़ी चौड़ी, सूनी

तल सड़क है। सिर्फ़ एक दोष है। इस पर केलू के गगन-
म्बी छतनार पेड़ नहीं हैं। जैसे इस ओर की पहाड़ियाँ रुंड-
ड हैं, वैसे ही सड़क भी है। कुछ वर्ष हुए लेडी वेलिंग्डन
की कृपा से मार्ग में थोड़ी-थोड़ी दूर पर पौधे लगाये गये हैं,
जो समय पा कर वृक्ष बन जायेंगे, किन्तु यह मनुष्य के हाथ से
लगाये गये पौधे मनुष्य को बनाने वाले के हाथ से लगाये गये
वृक्षों से सुन्दर होंगे या नहीं, यह निश्चय के साथ नहीं कहा
जा सकता। हाँ, एक बात निश्चित है। यदि वे पौधे बड़े हो कर
सुन्दर लगते तो इसका कारण होगा उनमें एक-दूसरे के बीच
कृत्रिम अन्तर और यदि यहाँ प्राकृतिक वृक्ष होते तो उनकी
नैसर्गिक घनिष्ठता।

सँजौली से सुरंग कोई एक फ़र्लान्ग की दूरी पर है और
सुरंग से मशोबरा कोई छः मील। सड़क पर खूब चहल-पहल
थी। फ़ौजी गाड़ियाँ धूल उड़ाती चली जातीं। कभी-कभी
कोई कार भी गुज़र जाती; वरना पहाड़ी लोगों का एक रेला
था जो अनवरत बह रहा था हमारे आगे-आगे एक पहाड़ी स्त्री
नंगे सिर, बाल सँवारे, गले में वाटरप्रूफ़ ओवर कोट पहने
पाउडर और सुर्खी से काले मुँह को चमकाये, कमर में तहब
कसे और पैरों में पम्प शू पहने अपने साथियों से हँसी-ठिठो
करती हुई चली जा रही थी। किसी पहाड़ी रमणी को
वेश-भूषा में देखने का मेरा यह पहला ही अवसर था।
में मालूम हुआ कि वह जाकू पर रहने वाली वारांगनाओं
से एक थी।

लगभग डेढ़ मील चलने पर एक जगह इस सड़क में
से एक और सड़क आ मिली। यह रास्ता किधर को
और किधर से आया है, यह जानने के लिए मेरा म
हो उठा और जब मुझे बताया गया कि यह मार्ग सँज

से भरी हुई दिखाई देती थीं। पार्टी के एक-दो आदमी दुकान पर सुस्ताने को बैठ गये। एक-दो नाशपातियाँ भी छीलीं और खायीं। इधर-उधर दृष्टि डालने पर दुकान के बाहर एक ओर खड़िया मिट्टी से हिन्दी में 'चरस' लिखा हुआ दिखायी पड़ा। दुकानदार की मदभरी आँखों का रहस्य अब खुला। तो यह अफ़ीम-चरस आदि का ठेका है ! पूछने पर इसका समर्थन भी हो गया। वहाँ भाँग, चरस, पोस्त और अफ़ीम मिल सकती थी। स्वयं दुकानदार महाशय पक्के नशेड़ी थे। 'मल्लाह दा हुक्का सुक्का'[1] वाली कहावत के वे अपवाद थे। धनाभाव और फ़ाकामस्ती के बाद अभागे पहाड़ियों के शरीर में जो लहू बच जाता है, उसे वे नशे से समाप्त कर देते हैं। जान-बूझ कर करते हैं अथवा तल्ख जिन्दगी से पलायन उन्हें विवश कर देता है, यह कौन कहे।

इस दुकान के साथ एक बूढ़ा कश्मीरी बिसाती सस्ती चीज़ों की हाट सजाये बैठा था। उसकी गोल दाढ़ी, गंजा सिर, पिलपिला मुँह और पीले दाँत मुझे कभी न भूलेंगे। वह हँसमुख भी था। हमें कुछ लेना-देना तो था नहीं, तो भी हम उसकी हरेक वस्तु को उलट-पलट कर देखने लगे, पर उसने तेवर तक नहीं बदले। पण्डित तेजभान के मज़ाक पर वह केवल हंसता रहा। इस वक्त भी उसकी सूरत और उसकी वह हँसी मेरे सामने है और वह उसी तरह हँस कर कह रहा है—'कोई अपनी तबीयत खुश कर ले, हमारा क्या जाता है।'

दाहिनी ओर एक छोटा-सा मार्ग नीचे को जाता था। वहीं एक नोटिस-बोर्ड लगा था, जिससे उस ओर जाने का निषेध

१. एक पंजाबी मिसाल, जिसका मतलब है कि मल्लाह का हुक्का सूखा ही रहता है, याने, पानी में रह कर भी उसे पानी भरने का अवकाश नहीं रहता।

था। पूछने पर भी इस मनाही का कारण मालूम न हो सका। शायद वहाँ पानी का बाँध था या कोई और बात थी। यकीनी तौर पर इसका कोई पता न लगा सका। हाँ कुछ पीछे, जो सुन्दर मोटर का रास्ता सीढ़ियों की-सी तरह नीचे उतरता था उस पर जाने की मनाही होने के कारण का यहाँ पता चल गया। वह शिकारगाह को गया था, जो दाहिनी ओर की घाटी में बनी थी। वह सरकारी शिकारगाह थी और वहाँ शिमला के प्रभुओं के अलावा किसी दूसरे को जाने की इजाजत न थी।

०

आगे चलने पर दायीं ओर घाटी की बजाय पहाड़ शुरू हो गया और बायीं ओर वह सुन्दर घाटी दिखाई देने लगी जो मशोवरे तक चली गई है। इसमे मशोवरे की ओर सिर किये हुए पहाड़ लेटे दिखाई देते हैं। जिस तरह मनुष्य सिर के नीचे सिरहाना रखकर उसे ऊँचा कर लेता है और उसके पैरों की ओर हल्की ढलान वन जाती है उसी तरह इन पहाड़ियो के सिर भी ऊँचे दिखाई देते हैं और ये कई मीलों तक हल्की ढलान में लेटी हुई नजर आती हैं। इन सोई हुई पहाड़ियों के पांवों में एक नाला वल खाता हुआ दिखाई दे रहा था। उन दिनो उसमें ज्यादा पानी न था लेकिन जुलाई और अगस्त के महीनों में तो उसकी शान देखने के लायक होती होगी। उसी नाले के जरा ऊपर घाटी में उस रियासत की राजधानी है जिसकी सीमा में सँजौली, मशोवरा और सी-पी आवाद हैं। राजधानी का नाम 'क्यार' है। कोटी सी-पी से परे स्थित है। दोनों को मिला कर रियासत का नाम 'क्यार-कोटी' प्रसिद्ध है। पर संक्षेप में इसे कोटी ही कहते हैं। किसी बडे पक्षी के फैले हुए डैनों ऐसी घाटी में धूप में चमकती क्यार के मकानों की

टीन की छतें बहुत भली लगती थीं।

कोई ढाई मील चलने के बाद एक सड़क ऊपर चढ़ गयी है। यह 'वाइल्ड फ्लावर हाल' से होती हुई 'कुफ़री' को जाती है। कुफ़री तक चढ़ाई-ही-चढ़ाई है। सैर के शौकीन ठठ-के-ठठ बाँधकर कुफ़री की सैर को जाते हैं। सारा दिन वहाँ बिताते हैं और साँझ को वापस लौटते हैं। वहाँ एक सराय भी है। वर्षा हो तो उसमें विश्राम किया जा सकता है। यदि रास्ते में वर्षा आरम्भ हो जाय तो भीगने में जो मज़ा आता है, उसे जवान लोग ही ले सकते हैं।

रास्ते के इस ओर दूसरे प्रसिद्ध स्थानों में ढल्ली और मालेरकोटला के नवाब के महल उल्लेखनीय हैं। ढल्ली भी एक सराय है। वहाँ भी शिमले के लोग पिकनिक को जाते हैं। वहाँ आने वाले प्रायः परिवार समेत जाया करते हैं और बिस्तर इत्यादि साथ ला कर रात को वहीं विश्राम करते हैं। मालेरकोटला के नवाब के महल के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। अन्दर से देखने का अवसर नहीं था। हाँ, द्वार पर कुछ एक वर्दीपोश सिपाही चाक-चौबन्द खड़े देख कर सिर्फ़ यही कहा जा सकता था कि कोई ऐरा-ग़ैरा नत्थू-खैरा उसके अन्दर नहीं जा सकता।

०

मशोबरे से कोई डेढ़ मील इस ओर वह स्थल है जिसके बारे में सुना था कि बड़ा सुरम्य है। इस जगह दाहिनी ओर पहाड़ बहुत ऊँचा है और सड़क के आधे भाग पर छाया हुआ है। रास्ता काटने वालों ने उसे बारहों महीने गिराना ज़रूरी नहीं समझा। आधी मेहराब-सा पूरी सड़क पर छाया, वह दिल में बेतरह हौल पैदा करता है। उसमें से पानी की बूँदें सड़क पर झरती रहती हैं और उस जगह को ठंडा रखती हैं। सड़क के

बायीं ओर मुसाफिरों के बैठने के लिए चौड़े-चौडे पत्थरों की टैरिस-सी बना दी गयी है। सारी-की-सारी पार्टी यहाँ कतार बाँध कर बैठ गयी। एक बार और पगड़ियाँ और टोपियाँ उतारी गयीं और ठंडी हवा मे लम्बे-लम्बे साँस लिये गये। मार्ग की धूप ने झुलस डाला था और फ़ौजी मोटरों के बेतहाशा चलने और अगणित तमाशाइयों की आमद-रफ्त के कारण गर्द से चेहरे अट गये थे और कितनी ही मिट्टी कंठ में उतर गयी थी। सामने पहाड़ के नीचे एक छोटा-सा झरना, छोटी-सी धार में निरन्तर बह रहा था। वहाँ हाथ-मुँह धो और चाक-चौबन्द हो हम फिर चल पड़े। सँजौली के समीप जो इसी तरह की जगह है, उससे यह कहीं अधिक सुरम्य है—हाँ, डरावनी भी ज्यादा है। डर लगा रहता है कि कहीं ऊपर से पहाड़ का कोई खंड निरन्तर पानी से सिंचते रहने के कारण अलग हो कर न गिर पड़े और नीचे जाने वाले की इह-लीला न समाप्त कर दे।

यहाँ से मशोबरा केवल डेढ़ मील है। चीड़ के वृक्षों का इस जगह बाहुल्य है। टहनियों के सिरों पर हरे-हरे लम्बे-पतले लचीले काँटों के गुच्छे-से हवा मे फहरा रहे थे। ठंडी हवा रमकने लगी थी। कहीं-कहीं पहाड़ियों की टोलियाँ पहाड़ी गीत गाती हुई गुज़र जाती थीं।

मशोबरा आ गया। इस छोटी-सी बस्ती में खूब चहल-पहल थी। यह भी सँजौली की तरह शिमले ही की एक बस्ती है। आबादी से किंचित दूर निवास करने के इच्छुक अंग्रेज और अंग्रेज-नुमा हिन्दुस्तानी वहाँ रहते हैं। एक वायसराय-हाउस भी है। वहाँ वायसराय कभी-कभी आ कर ठहरा करते हैं। मुझे याद है कि बाद में हमने उसके बगीचे के सेवों को भी चखा था। संयुक्त प्रान्त के एक मुसलमान के पास उसका ठेका था।

ूब दिलचस्प आदमी था।

यहाँ 'गेवल्स होटल' के नाम से एक बड़ा भारी होटल भी है। एक अंग्रेज़ के संचालन में बड़ी अच्छी तरह चल रहा है। सम्पन्न लोग ही यहाँ ठहरते हैं। इसी होटल के नीचे सड़क से एक मार्ग सी-पी को जाता है, जो यहाँ से कोई डेढ़ मील की उतराई पर एक सुरम्य जगह में स्थित है। असली नाम सीपुर है। सी-पी उसका संक्षिप्त और प्रचलित नाम है। यहाँ रीडर तथा दूसरे अहलकारों को साथ लिये कोटी के टिक्का साहब मेहमानों की अगवानी को खड़े थे। राजपूतों-जैसी शिमले वाली लम्बी लाल पगड़ी, काला अचकन, चूड़ीदार पायजामा, नोक-दार जूता लम्बी-लम्बी मूंछें, पतले से नाटे कद के चुस्त आदमी थे। आयु कोई तीस-पेंतीस वर्ष की होगी। हमारे देखते-देखते एक मोटर वहाँ उतरी और एक लम्बी-सी बल्लम हाथ में लिये एक रमणी के साथ एक लम्बे ऊँचे साहब उतरे। पूछने पर मालूम हुआ कि ये जंगी लाट हैं। टिक्का साहब को उनका स्वागत करते हुए छोड़कर, मशोबरे में मोल ली हुई खूबानि खाते हुए हमने सी-पी को प्रस्थान किया। नीचे—बहुत नी वाजों और मेले में आये हुए लोगों की चिल्ल-पों का मि जुला शोर ऊपर मशोबरे तक आ रहा था।

मेरी उत्सुकता को पंख लग गये थे, किसी पहाड़ी मेले देखने का मेरा यह पहला ही अवसर था। शहरों में ऐसे प्राय: होते हैं, जिनमें मदिरा-पान और जुआ होता है गीत गाये जाते हैं और लड़ाई-झगड़े भी होते हैं। कर्तार वैसाखी और जालन्धर का दशहरा ऐसे ही मेले हैं। इ में जाट प्रतिवर्ष नयी-नयी बोलियाँ (अश्लील गीत और गाते हैं और यहाँ से निकली हुई बोलियाँ सा गुण्डों और बिगड़े दिल वालों की ज़बान पर रहती है

मेलों में स्त्रियाँ प्राय: नहीं जातीं या जाती हैं तो गुरुद्वारे की चारदीवारी से बाहर नहीं निकलतीं । यहाँ सीपी के बारे में सुना कि स्त्रियों का खासा जमघट होता है । इसके अतिरिक्त और बहुत-सी बातें सुनी थीं, जिन पर मन विश्वास न करता था । इन सब बातों को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा ने पाँवों में पंख लगा दिये थे । यह डेढ़-दो मील का उतराई का रास्ता पलक झपकते समाप्त हो गया और हम सीपी पहुँच गये ।

मशोबरे से सीपी को जाने का मार्ग सँजौली से मशोबरे को जाने वाली सड़क की तरह वृक्षों से रहित नहीं है । यहाँ खूब छतनार के पेड़ हैं । इस इलाके में पहुँचते ही केलुओं से छन कर आने वाली ठंडी हवा ने रास्ते का सारा ताप हर लिया । सीपी में तो खूब ठंड थी । यह जगह घाटी के नीचे एक छोटे-से मैदान में स्थित है, किन्तु मैदान इतना बड़ा नहीं कि सारा मेला उसमें लग सके । इसलिए वह ऊपर और नीचे की ओर फैल जाता है । बाजार भी पहाड़ी नदी की तरह एक-दो बल खाता हुआ नीचे मैदान को गया है । दुकानें प्राय: वृक्षों के नीचे सजती हैं । यहाँ पहुँचते ही इस गहराई में पानी के प्रबन्ध पर आश्चर्य हुआ । पानी यहाँ बहुत दूर से आता है और टीन की एक बड़ी-सी टंकी में गिरता है, जिसमें टोटियाँ लगी हैं । यह पानी बहुत ठंडा था । बाद में मालूम हुआ कि यहाँ एक प्राकृतिक झरना है और मेले के लिए प्रति-वर्ष अस्थायी टोटियाँ लगा दी जाती हैं । वास्तव में इस इलाके में कितने ही ऐसे झरने हैं, पर सीपुर के झरने का पानी जितना मीठा और स्वादिष्ट है, वैसा किसी का नहीं । सबने हाथ-मुँह धो कर एक-दो घूँट पिये । पानी की टंकी के साथ ही एक खेमा लगा हुआ था, जिसके बाहर चाय के बर्तन पड़े हुए थे । यहाँ चाय के शौकीनों के लिए बिस्कुट, तोश और चाय का प्रबन्ध था । इसके

तनिक नीचे दो मार्ग हो गये थे। एक जनता के लिए था, ा पदाधिकारियों के लिए। दूसरे मार्ग पर एक दरवाज़ा हुआ था, जिस पर अंग्रेज़ी में 'वेलकम' लिखा हुआ लगा। यहाँ एक लोहे की डेढ़ रुपये वाली कुर्सी भी रखी थी और पर एक वृद्ध पण्डितों जैसी पगड़ी बाँधे बैठे थे। गले में रदौज़ी का चोगा पहने हुए थे और कमर में चूड़ीदार पाय-ामा था। इनके पास ही एक वृद्ध, लेकिन चुस्त व्यक्ति श्वेत ाचकन पहने डटे हुए थे। दरवाज़े पर एक गोरे रंग का युवक ावी ब्लू रंग का ब्लेज़र और वर्स्टेड की पतलून कसे खड़ा था। पूछने पर मालूम हुआ कि ये क्रमशः कोटी के राणा, उनके मन्त्री तथा रीडर हैं। किसी रियासत के राणा को एक टूटी-सी लोहे की कुर्सी पर बैठे हुए देख कर मैं आश्चर्य से उनकी ओर देखता रह गया।

हम वहाँ कुछ देर तक के लिए खड़े रहे। हमारे देखते-देखते वहाँ एक अंग्रेज़ आये। उससे पहले रीडर, फिर मन्त्री ने बातें की और फिर मन्त्री ने राणा साहब से कुछ कहा। इसके बाद राणा साहब ने खड़े हो कर उनका अभिवादन किया। इसके बाद वे भी राणा साहब की बग़ल में एक लोहे की कुर्सी पर बैठाये गये। ऐसा लगा कि राणा साहब अंग्रेज़ी नहीं जानते, इसीलिए उन्हें दुभाषिये की आवश्यकता रहती है। या यदि वे अंग्रेज़ी जानते हैं तो केवल काम-चलाऊ ही। मुझे यह बात किसी से पूछने की लालसा ही रही, लेकिन उस समय पार्टी के सब लोग आगे बढ़ कर मेला देखने और कहीं एकांत स्थान ढूँढ कर पेट-पूजा का प्रबन्ध करने के लिए बेताब थे।

वहाँ से हम निचले मार्ग से बाज़ार की ओर बढ़े। कुछ दू जाने पर ऊपर का मार्ग भी इस रास्ते में आ कर मिल गया दोनों के संगम पर तिब्बती लोग अपना सामान बिछाये बै

थे। उनके पास चीनी के वर्तन, कदाचित सेकेंड-हैंड पत्थर की प्यालियाँ और दूसरा विसाती का सामान था। इन सव में सवसे अच्छी विक्रेता एक स्त्री थी। उसका नाम लक्ष्मी था। वह शुद्ध हिन्दी और काम चलाने के लायक अंग्रेजी वड़ी फुर्ती से बोल लेती थी। ग्राहक को वातों में उलझा कर उससे दुगने दाम ले लेना उसके वायें हाथ का खेल था। उसे अंग्रेजों और भारतीयों का अन्तर भी अच्छी तरह मालूम था। कुछ चीजें उसने केवल अंग्रेजों के लिए ही रख छोड़ी थीं। हमारे देखते-देखते उसने एक पत्थर की हरे रंग की प्याली एक अंग्रेज युवती के हाथ दो रुपये में बेच डाली। मैं अथवा हमारी पार्टी में से कोई दूसरा इस प्याली के लिए मुश्किल से चार आने भी न देता। उसकी अंग्रेजी बोलने की क्षमता पर चकित हो कर एक अंग्रेज अफ़सर ने अपने साथी से अंग्रेजी में कहा, "यह देखो, तिब्बती औरत कैसे फ़रफर अंग्रेजी बोल रही है।"...यह तिब्बती स्त्री शिलाजीत भी बेचती थी, जो गोन्द अथवा सड़े हुए गुड़ के सिवा कुछ न था। लेकिन इस वात का पता तो मुझे वाद में चला। उस वक्त तो उसने हमसे चार-चार आने ठग लिये।

आगे चलने पर हलवाइयों की दुकानें आयीं। तभी पण्डित तेजभान ने वायीं ओर संकेत करते हुए मुझे बताया—"वहाँ मीना वाज़ार लगता है।"...लेकिन उस समय सवको कहीं आराम से वैठने और नौ मील चलने से अपने थके हुए पैरों को विश्राम देने की जल्दी थी, इसलिए उधर ध्यान न दे कर सीधे वाज़ार में उतरते चले गये। हलवाइयों की दुकानों के आगे जूए की दुकानें थीं और उसके वाद जरा-सा खुला मैदान था, जहाँ दरवार का शामियाना सजा हुआ था और चाँदी की कुर्सियाँ लगी हुई थीं। दाहिनी ओर मन्दिर था और कुछ तम्बू

लगे हुए थे। सामने ही जंगी लाट की पार्टी के लिए प्रबन्ध किया गया था और कुछ क़नातें लगी हुई थीं। हम बायीं ओर किसी विश्राम-स्थल की खोज में बढ़ गये।

## पाँच

पेड़ों की घनी छाया में एक अच्छी-सी एकान्त जगह पर पार्टी गोल दायरा बना कर बैठ गयी। सुबह दस बजे छोटे शिमले से चल कर नौ मील रास्ते की चिलचिलाती धूप में भुनते और मार्ग का धूल फाँकने के बाद थोड़ा आराम ज़रूरी थी। कुछ भूख भी लग आयी थी इसलिए ला० भोलानाथ और श्री रामलाल ने कुली के सिर से मिठाई और फलों का टोकरा उतरवाया। सबके आगे समाचार-पत्रों का एक-एक पन्ना रख दिया गया। 'समाचार-पत्रों' के जीवन की अवधि महज़ एक दिन होती है,' मैंने सोचा, 'लेकिन इस एक दिन में वे मनुष्य-मात्र को हर्ष-उल्लास, दुःख-सुख, आवेश-आवेग, त्रास-आश्चर्य—सभी अनुभूतियों का स्पर्श देते हुए खत्म होने के बाद भी बड़े काम आते हैं। मनुष्यों में ऐसे कितने है, जो मरने के बाद केवल चिता की अग्नि का ग्रास बनने के अलावा भी किसी का कुछ सँवार जाते हैं।'

ला० भोलानाथ ने मिठाई परसनी शुरू कर दी। उसी समय निकट ही पेड़ों के परे चलते हुए पँगूड़ों में से किसी में बैठी हुई किसी पहाड़ी युवती ने झूलते हुए तान लगायी :

'तुस पिच्छियाँ मैं होई बदनाम लोका'[1]

लम्बी तान और ऊँचे स्वर से गाया जाने वाला दर्द-भरा पहाड़ी गीत, रमणी का युवा कण्ठ, झूलते समय की मस्ती, गीत वायुमण्डल के कण-कण में बस गया। रिक्शा ड्राइवरों और ग्वालों की मीठी आवाज़ से कई बार पहाड़ी गीत सुने थे। कई

१. ऐ मेरे प्यारे, तेरे लिए मैं बदनाम हो गयी हूं

बारीक स्वर रखने वाले युवकों के मुख से भी 'मोहना' सुना था, लेकिन इतनी लय, इतनी हृदयस्पर्शी तान सुनने में न आयी थी।

सहसा पं० तेजभान ने मेरे विचारों का सिलसिला तोड़ दिया। "किसके विरह में कूक रही है ?"

नीरस क्लर्कों में एक ठहाका गूँज उठा और फिर सब मिठाई पर टूट पड़े, लेकिन मेरे कान बराबर उस पहाड़ी गीत को सुनने में व्यस्त रहे। कुछ अच्छी तरह समझ में न आ रहा था, केवल तान का आनन्द लिया जा सकता था, फिर भी जो समझ में न आया, वह हृदय को द्रवित कर देने के लिए काफ़ी था। पहाड़ी गीतों में उर्दू कविता की रदीफ़ और काफ़िये की कैद नहीं होती और न ही हिन्दी की छन्द रचना देखने में आती है। उनमें हृदय होता है—पहाड़ी युवतियों का हृदय—और होते हैं हृदय के कोमल उद्‌गार ! पहाड़ी रमणियाँ सीधे-सादे सरल शब्दों में वह सब कुछ बयान कर देती हैं, जो कवि अपनी लालित्यमयी भाषा में भी नहीं कर सकता, शायद इसलिए कि कवि का प्रेम-संसार, स्वप्न का संसार होता है और इन कान्त कामिनियों का वास्तविक !

१. 'गलां रियां मिट्ठियां
दिल्लां रियां पापने
तुश पिछियां में होई बदनाम लोका

---

१. प्यारे, तेरी बातें तो मीठी हैं, पर तेरे दिल में खोट भरा लगता है। मैं तो तेरे कारण बदनाम हो गयी हूँ।

२—थोड़ी-थोड़ी बुरी
मा-पियां री लगदी
सज्जनां दे बुरे बिजोग लोका
३—चिट्टे-चिट्टे कपड़े
भगवे रँगा दे
करि लेना जोगियां रा भेस लोका[3]

कैसा करुणापूर्ण गीत है ! था तो बहुत लम्बा, पर मुझे याद नहीं रहा। पहाड़ी गीतों में, गीतों में ही क्यों, पहाड़ के वातावरण में, समाज में, सभ्यता में, एक बात है और वह है—रूमान—जिस रूमान के हम किस्से पढ़ते हैं, सिनेमा के पर्दे पर देख कर उल्लसित होते हैं, उसे यदि प्रत्यक्ष देखना हो तो पहाड़ी लोगों में देखिए। जहां प्रेम हवा की तरह बहता है, जहां पहाड़ी युवतियां छिप कर प्रेम के गीत नहीं गातीं, बल्कि दूध के बर्तन उठाये चलती हुई गीत गाती जाती हैं। गायों को चराती हुई, ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ कर प्रेम से सने हुए पहाड़ी गीतों से प्रकृति की निस्तब्धता को गुंजा देती हैं। मर्दों की उपस्थिति उन्हें गीत गाने से नहीं रोकती और प्रायः वे अपने पुरुषों के साथ-साथ स्वर-में-स्वर मिलाती हुई गाती चली जाती हैं। पहाड़ी ग्वाला मार्ग चलते-चलते अपनी बांसुरी में, पहाड़ी रिक्शा वाला काम से अवकाश मिलने पर किसी हवाघर में बैठ कर, पहाड़ी चमार जूतियां गांठता-गांठता किसी ऐसे ही मर्मस्पर्शी गीत को अलाप उठता है।

२. मां-बाप का विछोह दुखदायी होता है, बुरा लगता है, लेकिन प्रियतम के विछोह से उसकी क्या तुलना ?—कितना सत्य है—'सजनां दे बुरे बिजोग लोका।'

३. अपने श्वेत वस्त्रों को मैं भगवे रँगा लूंगी और तेरे लिए योगिन का भेष धारण करूंगी।

मुझे किसी अवसर पर सब तरह के पहाड़ी गीतों को सुनने की बड़ी लालसा थी। इस मौके को उपयुक्त जान कर मिठाई और फलों से जल्दी-जल्दी निबट, मैं उधर को चल पड़ा, जिधर से गीत की ध्वनि आ रही थी। जहाँ हम बैठे थे उस स्थान और पँगूड़ों के मध्य में वृक्षों के सामने जा खड़ा हुआ। कोई दस पँगूड़े एक ही पंक्ति में लगे हुए थे, पर चल एक-दो ही रहे थे। अभी तक मेला भरा नहीं था। मेले के भरपूर होने का मतलब यह नहीं, कि मेले में रौनक न थी। रौनक खूब थी। जूए का बाज़ार खूब गर्म था। भोले-भाले व्यक्ति अपनी जेबों को खासी तेज़ी के साथ खाली कर रहे थे। हलवाइयों की मिठाइयाँ भी खूब बिक रही थीं। पकौड़ी वालों के हाथ भी विद्युत-वेग से चलते थे, लेकिन वह चीज़ न थी, जिसे देखने के लिए ,मेले के नव्वे प्रतिशत लोग आये थे। अभी तक 'मीना बाज़ार' नहीं लगा था। याने अभी पहाड़ी युवतियाँ काफ़ी संख्या में नहीं आयी थीं।....एक पँगूड़े पर एक पहाड़ी युवती मुँह पर पाउडर, चेहरे पर सुर्खी और आँखों पर चश्मा लगाये बैठी थी। चश्मा—हाँ, चश्मा ही। मैं भौंचक्का-सा देखने लगा। मेरे लिए यह अजीब बात थी। जब तक मैं खड़ा रहा, वह बराबर पँगूड़े में बैठी रही। मैंने समझा, इसने सीज़न पास ले रखा है, लेकिन बाद को मालूम हुआ कि वह एक पेशेवर औरत थी—वैसी ही, जैसी हमें रास्ते में मिली थीं, और पँगूड़े वालों ने उसे आकर्षण के लिए बैठा रखा था। मैं कितनी देर इसी आशा में खड़ा रहा कि वह अब भी अपनी सुरीली तान अलापेगी, पर लगता है, पहली गाने वाली कोई और ही थी।

०

वहाँ से निराश हो कर मैं बायीं ओर को मुड़ा। पहाड़ी स्त्रियों की नुमाइश के लिए जो स्थान नियत था, वहाँ केवल तीन

औरतें बैठी थी । यह जगह जरा ऊपर पहाड़ी पर थी । नीचे विसातियों की सस्ती जापानी वस्तुओं की दुकानें लगी हुई थीं । यह छोटा-सा बाजार था । इसमें अभी ज्यादा रौनक न थी । यह बाजार बड़े बाजार में मिल जाता था, जिसके आधे भाग में हलवाइयों और आधे भाग में जूए वालो की दुकानें थीं । मैं पंगूड़े के सामने से हट कर छोटे बाजार से होता हुआ ऊपर को चढ़ा, क्योंकि मैं उस तिब्बती स्त्री को फिर देखना चाहता था, जो बड़ी सरलता से हिन्दी बोलती थी और अंग्रेजी ग्राहकों को अंग्रेजी में उत्तर देती थी ।

मार्ग में मुझे एक 'बांसुरीवाला पहाड़ी 'मिला । बांसुरी पहाड़ियों का अपना साज है । मुझे याद है कि देश में जब भी कोई बांसुरीवाला मिलता था तो उससे प्राय: 'पहाड़ी' गाने के लिए ही अनुरोध किया जाता था । फिर मुझे भी कुछ बांसुरी बजाने का शौक था और यद्यपि पांच बरसों मे कई बांसुरियां तोड़ चुका था, लेकिन था वही जहां से पहले चला था । मैंने एक बांसुरी ले कर उसमें फूंक दी । बांस की पोरी सुरीली आवाज से कूक उठी—शायद इस बात की फ़रियाद कर रही थी कि कृष्ण काले के अधरों से लग कर उसे जो आनन्द प्राप्त हुआ था, वह अब नहीं होता । बांसुरी खरीदने का तो मेरा कोई विचार नहीं था । मैं तो पहाड़ी गीत सुनना चाहता था । इस खयाल से कि बांसुरी वाले को जरूर पहाड़ी गीत आते होंगे, मैंने उसे बांसुरी वापस देते हुए कहा :

"क्यों भई, कोई पहाड़ी गीत भी आता है ?"

"बीसियो आते हैं ।"

मैं बड़ा खुश हुआ । मैंने जेब से नन्ही-सी सुनहरी पाकेट बुक निकाली और कामिनी-सी नाजुक श्वेत पेंसिल को हाथ में ले कर गीत लिखने के लिए प्रस्तुत हो गया ।

पहाड़ी ने मेरी ओर आश्चर्य-चकित आँखों से देख कर अपनी भाषा में पूछा—"क्या सुनना चाहते हो !—'देवरा,' 'छोरुआ,' 'मोहना !'," मैंने छोरुआ और मोहना सुने हुए थे। इसलिए कहा—"देवरा सुना दो !"

उसने मेरे निकट हो कर एक बन्द सुनाया। मैं स्तब्ध-सा खड़ा रह गया। गीत अत्यन्त अश्लील था। मैंने उसकी ओर देखा। वह हँस रहा था।

"क्यों बाबू कैसा रहा ?"

मैंने कहा—"कोई सीधा-सादा गीत सुनाओ, गन्दा नहीं चाहिए।"

पहाड़ी ने एक बार मेरी ओर देखा और फिर हँसता हुआ चला गया। मैं खिन्न-सा कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा, फिर मैंने पाकेट बुक को अपनी जेब में रख लिया। शायद बाँसुरीवाले ने अपना बहुमूल्य समय मुझ-जैसे मूर्ख और नाक़द्र-शनास के लिए गँवाना उचित नहीं समझा। न मैंने उससे बाँसुरी खरीदी, न उसके गीत की प्रशंसा की। उसके गीत का पहला पद आज भी मेरी डायरी में उसी प्रकार लिखा हुआ है और पृष्ठ पर दस जून १९३४ की तारीख है, जिस रोज़ शायद हम लोग मेला देखने गये थे। पद यों है :

'भावो नहान गयी नरकंड'

इसके आगे अश्लील था। बाँसुरी वाले को जो और बीसियों गीत आते थे, वे इस अश्लील गीत से बेहतर नहीं होंगे, इसका मुझे पूरा विश्वास है। शायद 'छोरुआ'° और 'मोहना'° में गन्दे बन्द न मिलते हों, पर 'देवरा'° के गीत इतने अच्छे, भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी नहीं। बाँसुरी वाले के बाद

° प्रसिद्ध पहाड़ी गीत

मैंने वरड़ियों[१] के कल-कण्ठ से देवरा भी सुना :

माबो चलो गयी है दूर
पेटे घोड़ कलेजे सूर
अरको नेड़े, शिमला दूर
हकीम लियायीं देवरा
देवरा वे — लोभिया[२]

और एक दूसरा नमूना है :

बागे लानीआं में तूत
चिट्टा चिट्टा रूं दा सूत
मैं गजरेटो तूं रजपूत
जोड़ी मिल गयी ये देवरा
देवरा वे — लोभिया[३]

इन पहाड़ी मेलों में विशेष रूप से और दूसरी जगहों पर साधारणतया वरड़ियाँ दिखायी दे जाती हैं। इनमें अधेड़ उम्र की और जवान, दोनों होती हैं। पेशे के लिहाज़ से ये बिन्ने[४]

१. पहाड़ों में आ कर भीख माँगने वालियाँ ।
२. ऐ देवर तेरी भौजाई (तेरे साथ सैर करते-करते) दूर निकल आयी है। उसके पेट में ज़ोर का दर्द उठा है और कलेजे में शूल हो रहा है। यहाँ से अरकी (पहाड़ी कस्बा) समीप है और शिमला दूर है। तू शीघ्र हकीम-वैद्य को ले आ—ऐ मेरे लालची देवर !
३. बाग में शहतूत के वृक्ष लगाये जाते हैं, रूई का सूत श्वेत उतरता है। ऐ मेरे लालची देवर ! मैं गूजरों की बेटी हूँ और तू राजपूत है। हमारी-तुम्हारी जोड़ी खूब मिल गयी है।
४. पानी भरते समय सिर के ऊपर घड़ों को रखने के लिए ह अथवा रस्सी के बटे हुए गोल आकार के बिन्ने, जिन्हें गुर घड़े के नीचे रख लेती हैं। इंडुरी।

...ाती हैं, लेकिन प्रायः माँगना ही इनका व्यवसाय है। ...रमात्मा ने इन्हें रंग चाहे अच्छा न दिया हो, लेकिन नक्श ...तीखे दिये हैं। स्वर तो इनका जादू-भरा होता है। ये गाती और माँगती फिरती हैं। बिगड़े दिल वाले इन्हें बैठा कर गाना सुनने के साथ अपनी आँखों और विलासी हृदयों की तृप्ति का भी कुछ सामान कर लेते हैं। ये हर प्रकार के व्यंग्य को मुस्कराहट में टाल कर प्रायः ऐसे लोभी भद्र पुरुषों की जेबें खाली कर जाती हैं। इनके सम्बन्ध में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन मैंने यह देखा है कि जहाँ किसी ने किसी प्रकार की दराज़-दस्ती करने की कोशिश की, वहीं ये भाग खड़ी हुईं।

सी-पी में भी इनकी दो-तीन टोलियाँ आयी हुई थीं। मैं बाँसुरी वाले की मूर्खता से निराश हो कर आगे चलने ही को था कि मेरे कानों में बारीक-सी, मधुर, मनोमुग्धकारी आवाज़ आयी। नज़र उठा कर देखा तो बाज़ार से ज़रा ऊपर पहाड़ी पर एक वृक्ष के नीचे कुछ बरड़ियाँ गा रही थीं। एक-दो ... कानों पर हाथ रखे हुए थे। कमर में लहँगे, तन पर कमी... उन पर जाकटें, सिरों पर रँगे हुए दुपट्टे, कानों में बालि... काले मुख उबटन से चमकाये हुए, अधरों पर दातुन... गहरा रंग, तीखे नक्श, छातियाँ तनी हुई, श्याम वर्ण के ... भी आने-जाने वालों को आकर्षित कर रही थीं। सब ... भरे गले से मिल कर गा रही थीं। आने-जाने वालों को ... आँखों से देख भी लेती थीं।

मैं उधर को चल पड़ा।

वे एक-दो सिक्खों, दो-एक पहाड़ियों और तीन-च... मूक दर्शकों के घेरे में बैठी हुई थीं। चार गुवा थीं, ए... मैं इस टोली के पीछे जा कर खड़ा हो गया। उस...

एक सिक्ख सरदार की जेब से एक-दो पैसे निकालने के प्रयत्न में थी और सरदार साहब मुफ़्त में आनन्द लेने वालों में से थे। गीत को बीच ही में बन्द करके एक ने, जो सबसे सुन्दर थी, कटाक्ष के तीर बरसाते हुए कहा :

"दो, सरदार साहेब, एक-दो पैसे दो 'वाह गुरु' आपका भला करे !"

"एक-दो क्या आठ आने लो, रुपया लो, पर जो मैं कहता हूँ, वो भी करो।" सरदार साहब बोले।

"आप क्या कहते हैं ?" एक युवती ने मुस्करा कर कहा।

"हमारे साथ चलो !" और इसके साथ ही सरदार साहब ने आँख का इशारा किया, "यहाँ दिन-भर में भी एक रुपया न मिलेगा।"

वरड़ी ने कुछ लजा कर, कुछ हँस कर उनकी ओर से मुँह फेर लिया और एक सिपाही की ओर देख कर बोली :

"थानेदार साहेब, आप ही एक-दो पैसा दें, परमात्मा आपका इकबाल दूना करे !"

थानेदार साहब मूँछों पर ताव दे कर मुस्करा दिये।

इस बीच में एक की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी। उसने उस युवती को मुझसे माँगने का इशारा किया। वह मुझसे सम्बोधित हुई :

"बाबू साहेब आप भी कुछ मेहरबानी कर, परमात्मा आपको पास करे, नौकरी दिलाये !"

भारतवर्ष के युवकों में बढ़ी हुई बेकारी का हाल इन वरड़ियों से भी छिपा न था। इसी लिए उन्होंने दो ही बातें कहीं। उनके निकट मेरे जितनी आयु के युवक के लिए पढ़ना या बेकार फिरना, दो ही बातें हो सकती हैं।

वे सिक्ख महाशय मेरे आगे बैठे थे। उन्होंने मुँह ५ ''

र मेरी ओर देख कर कहा :

"हाँ, ये ज़रूर देंगे, इनकी जोड़ी भी तुमसे मिलती है।"

बरड़ी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। मैं कुछ खिन्न हो

ाया। हँसा अवश्य, लेकिन मैं नहीं, मेरी लज्जा हँस रही थी।

"पहले कुछ सुनाओ भी।" मैंने हैट उतार कर घुटने पर रखते हुए कहा।

मेरे कहने के साथ ही उनका समवेत स्वर वायु में गूंज उठा :

'ओ तां जान करन कुर्बान, जिन्हां ने दर्शन पा लये ने'[१]

मैंने उन्हें रोक कर कहा, "यह गीत तो मैंने देश में भी बहुत सुने हैं। कोई यहाँ का गीत सुनाओ, 'छोरुआ,' 'मोहना,' कोई और।"

और वह 'छोरुआ' गाने लगीं।...'छोरुआ' सब पहाड़ों में गाया जाता है। गाँव-गाँव में इसके गाने की पृथक रीतियाँ हैं। उन्होंने जो गीत सुनाया, वह यों था :

क—ब्राह्मणा देया छोरुआ ओ
शिमले न जाना मंगी खाना
तूं तो बेईमान बनिआ—छोरुआ—ओ-ो-ो
ख—ब्राह्मणा देया छोरुआ ओ

१. जिन्होंने तुम्हारा दर्शन कर लिया, वे अपना तन-मन तुम... वार सकते हैं।

क—ऐ ब्राह्मण युवक, शिमले न जा, माँग कर खा लेना अ... वियोग मुझे असह्य है। तू बेवफ़ा निकला है, जो मुझे... शिमले जाने को तैयार हो गया है।

ख—(दोनों कहीं भाग जाते हैं—प्रेयसी कहती है) ऐ ब्राह्म... यह देश बेगाना है। यहाँ अकड़ नहीं चलेगी, नम्रता... सेना होगा

देस बगाना नीवीं चलना
तूँ तो बेईमान बनिआ—छोरुआ—ओ-ओ-ने
ग—ब्राह्मणा देया छोरुआ ओ
रुसी के ना जाना मेरे जानीयाँ
तू तो बेईमान बनिआ—छोरुआ—ओ-ने

एक और छोरुआ जो मैंने पहले किसी पहाड़ी के मुंह से सुना था, यों है :

ब्राह्मणा देया छोरुआ, ओ बेईमानां—
तूँ तां दूर गयों छोटे शिमले नू
मेरी रोंदी दे भिज गये तिन्ने कपड़े
ओ बेईमाना—
ब्राह्मणा वा छोरुआ ओ, बेईमाना[१]

पिछले जमाने में जब लड़ाइयों-भिड़ाइयों का समय था, रास्ते ऊबड़-खाबड़ थे, जो लोग परदेश जाते थे, उनके आने का ठिकाना नहीं होता था, तो देश की युवतियाँ, नव-विवाहिता वधूएँ अपने पतियों को परदेश जाने से रोकती थीं। उनकी जुदाई से उनकी आत्मा सिहर उठती थी। पंजाब में महायुद्ध के समय के ऐसे अनेकों गीत मौजूद हैं। देखिए अपने प्रियतम की जुदाई में पंजाबी दुलहिन रो कर, निराश हो कर सहेलियों से किस प्रकार उनकी शिकायत करती है :

---

ग—ऐ ब्राह्मण युवक, मुझसे रुठ कर न जा, मेरे प्राण, बेईमान क्यों बनता है ?

१. ऐ बेईमान ब्राह्मण युवक, (प्यार के साथ प्रेमी को बेईमान कहा गया है) तू तो छोटे शिमले चला गया और रोते-रोते मेरे तीनों वस्त्र भीग गये हैं।

देखो सइयो नी मेरा ढोल कमला।
मेरा ढोल कमला
आर गंगा नी सइयो पार जमुना
विच वरेती धक्का दे नी गया सी ।[१]

प्रेयसी के लिए अपने प्रियतम के प्रेम के आगे नौकरी भी कोई महत्व नहीं रखती। मारवाड़ी प्रेयसी अपने प्रेमी के साथ फ़ाके काट कर भी गुज़ारा कर सकती है। यह विचार कि सौ योजन पर बैठा हुआ उसका पति सौ रुपये प्रतिमास कमा रहा है, उसे तनिक भी सान्त्वना नहीं देता। वह उसके विरह में विह्वल हो उठती है और कह उठती है :

अस्सी रे टका री ढोला चाकरी वे
कोई लाख मोहर की नार,
लाख मोहर की भोली नार, हो जी ढोल।
अब घर आय जा गोरी रा बालम हो जी[२]

नौकरी को जाने वाले पंजाबी युवक को देखिए, उसकी प्रेयसी क्या कह कर रोकती है—कितने विनीत शब्द हैं, करुणा से कितने सने हुए :

---

१. ऐ मेरी सहेलियो ! (तुम यहाँ आओ तो देखो) मेरा भोला (कमला का अर्थ होता है भोला-भाला, पगला) प्रिय मुझे कहाँ छोड़ गया है ? इस ओर गंगा है, उस ओर जमुना है। वह मुझे वरेती (पुलिन) में छोड़ गया है।

२. प्यारे, तेरी नौकरी तो केवल अस्सी टकों की है, लेकिन तेरे घर में तेरी जुदाई में जान देने वाली तेरी लाख मोहर की पत्नी है। ऐ गोरी के प्रियतम, अब देर न करो, अवश्य घर आ जाओ।

वे बीया, न जा
वे मैं हरदम नौकर तेरी आं—बीया न जा
वे बीया, न जा[१]

कुछ इसी तरह की स्थिति पहाड़ी युवतियों की है। शिमले के मौसम में निर्धन पहाड़ी युवक जीविकोपार्जन के निमित्त पांच-छः महीनों के लिए शिमला आ जाता है। उसके विरह में पहाड़ी प्रेयसी अलाप उठती है :

शिमले न जाना मंगी लाना

कांगड़े के पहाड़ में जो छोरुआ गाया जाता है, वह भी सुनिए :

ब्राह्मणा देया छोरुआ ला तेरे ताईं लोकी कहँदे कंजरी
बसा ओ साजन मेरिया
ला तेरे ताईं लोकी कहँदे कंजरी[२]

लम्बी तानें और दर्द-भरे गीत, जिनमें पहाड़ी युवतियों के हृदय के उद्‌गार होते हैं, उनके मुंह से ही सुनने के लायक है। इन्हें सुनते हुए कौन ऐसा मनुष्य है जो मन्त्र-मुग्ध नहीं रह जाता। आदमी को चाहे समझ नहीं आ रहा, लेकिन तानें ही कुछ ऐसी हैं, स्वर ही कुछ ऐसा है, पहाड़ी लोगों के गाने का ढंग ही कुछ ऐसा है कि वह चुप गुमसुम खड़ा सुनता रहता है।

तीन-चार बन्द सुना कर ही बरड़ियों ने गीत बन्द कर

---

१. ऐ प्यारे, मैं मिन्नत करती हूं, तू परदेश न जा। मैं हरदम (प्रतिक्षण) तेरी नौकरी करने वाली हूं। दूसरे शब्दों में—तुम्हें नौकरी की क्या ज़रूरत है। ऐ मेरे प्यारे, परदेश न जा।

२. ऐ ब्राह्मण युवक, तुमसे प्रेम करने के कारण लोग मुझे [illegible] पुकारते हैं।

ञ्या और पैसा माँगने लगीं। मैंने उन्हें कहा, "एक-दो वन्द
ीर सुनाओ!"

"यह इतना ही है।"

गीत बहुत लम्वा था, पर शायद उन्हें आता ही न था अथवा वे मुझे सुनाना न चाहती थीं, खैर मैंने एक पैसा फेंक दिया और कहा—"अब मोहना सुनाओ," और मोहना फ़िजा में गूँज उठा।

०

उन गीतों में, जो पहाड़ियों में लोकप्रिय हैं, 'मोहना' सबसे प्रसिद्ध है। इसके अलाप की भी अपने-अपने गाँव की प्रथा के अनुसार भिन्न-भिन्न रीतियाँ हैं, लेकिन सब आकर्षक और मनमोहक!

इस गीत का अपना छोटा-सा इतिहास है। कई तरह की किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगों का कहना है कि मोहना एक सुन्दर वलिष्ठ पहाड़ी युवक था। उसकी जोरू को किसी पदाधिकारी ने छेड़ा। मोहना इसे सहन न कर सका। उसने उसकी हत्या कर दी। मोहना को फाँसी मिली। पहाड़ी लोगों ने उसे शहीद का दर्जा दे दिया। उधर उसे फाँसी मिली, इधर घर-घर उसके गीत गूँज उठे।

किस वजनी वो, मोहना किस वजनी
तेरी वंदां वाली वंसी (ओ मोहना) किस वजनी[१]
चन्ने पिपली वो मोहना चन्न पिपली
तेरे वो विजोगे, बोल, बाहरे निकली[२]

---

१. ऐ मोहन! अब तेरी सुन्दर वन्दों वाली (पीतल के तार वाली) बाँसुरी को कौन बजायेगा?

२. ऐ मोहन! पिछवाड़े पीपल का वृक्ष है। मैं तेरी जुदाई तंग आ कर वीराने की ओर निकल पड़ी हूँ।

तू नहीं दिस्सदा वो मोहना, तू नहीं दिस्सदा
मेरा पाइया-पाइया लहुआ (ओ मोहना) रोजे सुक्कदा[1]

लेकिन कुछ लोगों का खयाल है कि मोहन अविवाहित था और पदाधिकारी की हत्या उसके भाइयों ने की थी। वे सब बाल-बच्चों वाले थे। उनके फांसी पाने के बाद उनके बाल-बच्चों की क्या दशा होगी, इस विचार से मोहना ने अपनी कुर्बानी दे दी। उसने कह दिया यह हत्या मैंने की है—उसके भाई बच गये, पर वह फांसी के तख्ते पर चढ़ गया। कई गीतों में इस बात का जिक्र किया गया है।

तख्ते चढ़ी गया जी मोहना तख्ते चढ़ी गया
बोल भाइयां दे जो कारणे मोहना, तख्ते चढ़ी गया[2]

दोनों कहानियों में से अन्तिम अधिक सच्ची लगती है। और अधिकांश पहाड़ी लोग मोहना के सम्बन्ध में यही कथा सुनाते हैं। 'मोहना' के बहुत से बन्द भी इस कहानी का समर्थन करते हैं, जैसे :

खाई लै बबरू वो मोहना खाई लै बबरू
अपनी भाभियां दे हाथां दा वो खाई ले बबरू[3]
तख्ते चढ़ी गया जी मोहना तख्ते चढ़ी गया
अपने भाइयां दे वो कारणे मोहना तख्ते चढ़ी गया[4]

---

१. ऐ मोहन ! तू कहीं भी दिखायी नहीं देता और तेरे विरह में मेरा पाव-पाव लहू रोज सूखता जा रहा है।
२. हाय मोहन फांसी के तख्ते पर चढ़ गया, सुन्दर सलोना मोहन फांसी पर चढ़ गया।
३. ऐ मोहन (भाभियां उसकी जुदाई में रो कर कहती हैं) अपनी भाभियों के हाथ का बबरू (मोटी रोटी) खा ले।
४. अपने भाइयों के पाप को छिपाने के लिए मोहन ने फांसी को गले लगा लिया।

किन्तु जिस प्रकार पंजाब का हर प्रेमी 'राँझा' है और हर
ी 'हीर,' इसी तरह पहाड़ का हर युवक मोहना है और
प्रेयसी मोहना की वियोगिन उसकी भाभी ! पहाड़ी प्रेमिका
ने प्रेमी के विरह में मोहना के नाम से गीत गाती है। इस
त के वीसियों वन्द हैं। लेकिन वरड़ियाँ ज्यादा नहीं सुनातीं
ार पैसे माँगने लगती हैं। तो भी मैंने कई वन्द सुने।

१. तेरे दर्द वो मोहना, तेरे दर्द
बोल गला मेरा कट्टिया पैनिये करदे[1]
२. फुल्ली दड़ने वो मोहना, फुल्ली दड़ने
वोल, खाया मेरा कावल जा वो तेरे झड़ने[2]
३. खाना मौऊरा वो मोहना खाना मौऊरा
एस पापिए नहीं रहना ओ ठल्ली दे शाहुरा[3]

इन सीधे-सादे गीतों में कितना दर्द है, कितनी टीस, कितनी हसरत है, यह वही लोग जान सकते हैं, जो दिल रखते हैं और जिन्होंने वियोगी हृदयों में कभी पैठ कर देखा है।

०

पहाड़ी गीतों में छोरुआ, मोहना, लोका, देवरा ही लोकप्रिय हैं और इसलिए उल्लेखनीय भी हैं। लेकिन पहाड़ों में नाटियाँ भी गायी जाती हैं। लालित्य, सुन्दरता और भावों की उड़ान के विचार से ये भी किसी अन्य पहाड़ी गीत से कमतर नहीं।

---

१. ऐ मोहन ! तेरी जुदाई का दर्द मेरे गले को तीक्ष्ण (चाकू) की तरह काट रहा है।
२. मोहन दड़न (अनार का पेड़) फूल उठा है, तेरा सुन्दर रूप मेरे दिल को खाये जा रहा है।
३. मधु खाने का मौसम आ गया है। यह पापी युवक (देवर ... व्यंग्य छोड़ा गया है) इस बहार में तंग करेगा, इसे ससुराल ... दो (अर्थात इसका विवाह कर दो)।

इनमें स्वर का उतार-चढ़ाव अधिक होता है, कभी तार सप्तक तक उठ जाने वाला और कभी मध्यम से भी नीचा, कभी ऐसे जैसे नदी की लहरों पर तैर रहा हो और कभी ऐसे जैसे पहाड़ की चोटी पर उड़ा जा रहा हो। किसी नाटी को एक बार सुन कर उसी तान, लय और स्वर से गाना प्रायः असम्भव है। पहाड़ी नाटियाँ अधिकतर प्रेम और इससे सम्बन्धित विषयों पर होती है। हो सकता है दूसरे विषयों पर भी गीत मौजूद हों, पर बरड़ियों को प्रेम-सम्बन्धी नाटियाँ याद थीं, शायद वे वही गीत गाती थीं, जो श्रोताओं को अच्छे लगते थे।

उस समय जब बरड़ियाँ 'मोहना' गा रही थीं, उनकी एक दूसरी टोली कुछ दूर बैठी दो शराबियों का मनोरंजन कर रही थीं। तीनों युवतियाँ थीं। एक अधिक सुन्दर थी। एक पुरुष ने शराब का पैग पी कर उसको पान पेश किया, उसने पान ले कर खा लिया। फिर उसने नशे में मस्त हो कर उसकी ओर हाथ बढ़ाया। उस समय तीनों वहाँ से भाग खड़ी हुई। पैसे वे पहले ले चुकी थीं। तीनों हमारे पास आ खड़ी हुइ। मोहना के बाद नाटियाँ उन्ही ने सुनायी।

मूशी वे हाथों दा काली डंडिए छाता
बोल, कूनी पापी चुगली थे, कूनी दीता पाता
हाय बाबू रैंजरी कूनी दीता पाता[1]

बानरे थी हाल्टो, ओ लोहे रे ना फाले
टोपी पाई पाकेटे गरारा टांगे डाले

---

१. मूशी के हाथ में डंडी की छतरी है। वह रैंजर से (जंगल) का रैंजर जिससे उसकी मुहब्बत हो जाती है) कहती है कि हाय प्यारे, हमारे भागने का किस पापी ने पता दिया! किसने हमारी चुगली खायी।

हाय बाबू रेंजरो गरारा टाँगे डाले[1]

क—शक चने भुल का, धनियाँ रे नाँ डाल

म्हारे लाने नठेरो, बाबा देगा गाले

हाय बाबू रेंजरो बाबा देगा गाले[2]

कहानी यों है कि मूशी रेंजर के साथ भाग गयी है। किसी ने रिश्तेदारों को उनका पता दे दिया। मूशी पकड़ी गयी। मूशी को खूब पीटा गया। तब मूशी चुगली खाने वाले को कोसती है :

कूनी पाई चुगली, वो कूनी दीता पाता

दूसरी नाटी यों है :

साजन

ख—चान्दी री चुलटी सोइने रे गट्ठी,

---

१. इस पद्य में वहाँ के देहाती जीवन का चित्र है। मूशी फिर काम-काज में लग गयी है। बाँस की लकड़ी का हल है और उसमें लोहे का फल लगा हुआ है, मूशी ने टोपी जेब में डाल ली है और गरारा(खुला पाजामा) वृक्ष की डाली पर टाँग दिया है, पर रेंजर की याद उसका पीछा नहीं छोड़ती।

क—इस पद्य में वह घर के काम-काज में व्यस्त दिखायी गयी है। भुलका की तरकारी बनाती है, पर ध्यान तो उसका अपने प्रेमी की ओर लगा हुआ है। शाक में धनिया डालना भूल गयी है। इसलिए कहती है—मैंने शाक बनाया है, शाक तो अच्छा बन गया है, पर बेध्यानी में धनिया डालना ही भूल गयी हूँ। अब बाबा मुझे गाली देगा। मुझसे तो यह काम न होगा। मैं तो भाग जाऊँगी, हाँ प्यारे रेंजर, मैं तो भाग जाऊँगी।

ख—पथिक पूछता है, "ऐ चतुर युवती, तेरी अँगीठी तो चाँदी की है और चूल्हा सोने का है, फिर तू धरती पर क्यों बैठी है। हाँ रे

वोते बोले पातिरो
लल्ले भोईं विए बैठिए, मेरीए री नैहनिएँ
नैहनी
जाले रेया पण्डिता खोले पत्री सांचा
ऐसी देनी सायतो
कदे पट्टनी जामटा, मेरिया वे साजना।
साजन
ग—तारिवो रे ढाको वे होले गोने वे माऊ,
माटी हेठ मैं वो सोरिगो
ताहरे फड़के आवो, आवो मेरिए री नैहनिए
नैहनी
घ—छाए बोचरा छाछुआ, दुध बोचुरा खोया,
सच बोले रे साजना
कूनी म्हारा ज्युरा छड़ोया, मेरिया रे साजना

---

नैहनी, तू धरती पर क्यों बैठी है ?"

नैहनी कहती है, "जाकू के पण्डित से आ कर पूछ कि वह सच्चा ज्योतिष लगा कर ऐसी सायत बताये जब कि मैं यहाँ से उठूँ। (तात्पर्य) यह कि जाकू के पण्डित से पूछ कि कब मेरा प्यारा आयगा और कब मैं यहाँ से उठूंगी, क्योंकि मैं उसी की प्रतीक्षा कर रही हूँ।—हाँ, ऐ साजन जाकू के पण्डित से पूछ।

ग—प्रेमी कहता है, "ऐ मेरी प्यारी, तेरे और मेरे मध्य में तारा देवी का टीला (पहाड़ी) है और वहाँ मधु-मक्खियों ने छत्ते बना रखे हैं, परन्तु मैं इस पहाड़ी में सुरंग निकाल कर मैं तेरे पास आ जाऊँगा —हाँ मेरी प्यारी नैहनी, मैं सुरंग लगा कर तेरे पास आ जाऊँगा।"

प्रेमिका कहती है :

लस्सी का शेष छाछ होती है और दूध का शेष रह जाता है खोया, ऐ मेरे साजन, सच बताओ मेरा दिल किसने लिया है! :

५

इस नाटी के और भी पद हैं, पर वे कुछ समझ में नहीं आ
। कुछ साजन के मुँह से और कुछ नैहनी के मुँह से कहे गये
। पर यह नाटी समझने में कुछ-कुछ मुश्किल है, इसे लिखने
और समझने में भी मुझे बड़ी कठिनाई पेश आयी। बरड़ियों
अजीव उच्चारण और मेरा अच्छी तरह पहाड़ी बोली न
मझना इस सुन्दर और भावपूर्ण नाटी का आनन्द उठाने में
बाधक हो गये।

०

इधर के पहाड़ों में, जैसा कि मैंने कहा, पहाड़ी गीत अधिकतर प्रेम, विरह और ऐसे ही दूसरे विषयों पर सुनने में आते हैं। विवाह-शादी पर, पानी भरते अथवा चक्की पीसते, खरास चलाते अथवा गायें हाँकते समय पहाड़ी स्त्रियाँ, अपनी सुरीली आवाज़ में ज़रूर ही सुन्दर गीत गाती होंगी, पर वे कैसे होते हैं, यह मैं नहीं जानता। हाँ, जो कुछ मुझे सुनने को मिला, उससे एक बात अच्छी तरह मालूम हो गयी और वह यह कि इन पहाड़ियों में रूमान हवा के साथ उड़ता है। जो लोग पश्चिमी सभ्यता पर, वहाँ के रूमानी वातावरण पर चकित रह जाते हैं, यदि वे इन पहाड़ों पर कोर्ट-शिप और विवाह की रीतियाँ देखें तो हैरान रह जायें। पहाड़ी युवती जिसे चाहे प्रेम करती है। जिससे दिल मिल जाता है, उसके साथ भाग जाती है। यह बात कुँआरी लड़कियों के सम्बन्ध में ही नहीं कही जा सकती, वरन विवाहित स्त्रियाँ भी पति-व्रत धर्म पर आरूढ़ न रह कर अपनी इच्छा के अनुसार करती हैं और अवसर पाने पर अपने प्रेमी के साथ भाग जाती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि प्रायः लड़की के माँ-बाप उसका विवाह बाल्य-काल में ही कर देते हैं। जब वह बड़ी हो जाती है तो उसका मन अपने पति से नहीं मिलता, अ

होती ही है, इसलिए वह भाग जाती है। भगाने वाले के लिए इन लोगों ने आर्थिक दण्ड के सिवा और कोई सजा नहीं रखी। यदि वह दो-तीन सौ रुपया दे सकता है तो किसी भी निकम्मे व डरपोक की पत्नी को भगा सकता है।

इससे यह तात्पर्य नहीं कि पहाड़ में पतिव्रता स्त्रियों का सर्वथा अभाव हो गया है। पहाड़ी गीतों में भी 'प्रेम,' 'विरह' के अतिरिक्त दूसरे गीत भी हैं। एक-दो बन्द ऐसे भी मैंने सुने। देखिए, पिता की आय अधिक नहीं, लड़की मूल्यवान वस्तुएँ माँगती है। गीत में किस प्रकार इसका उपहास उड़ाया गया है।

शिमले बाजार दू बी बोकोली न कड़ी
बेटी मांगे दर्शनो मोनरे पाऊंबरी घड़ी
हाय बेटी दर्शनो, पाऊंबरी घड़ी[1]
शिमले बाजार दू बी फेरे गये ऊंटों
बेटी मांगे दर्शनो राबेरड़ो रे बूटो
हाय बेटी दर्शनो राबेरड़ो रे बूटो[2]

इसी प्रकार का एक और गीत है। यहाँ माँग पति से की गयी है।

डूंगी डूंगी वासो
मेरे दिल दी दिवासी
उच्चा उच्चा बंगला पवादे बल्या
अलबेलुआ वो[3]

---

१. शिमले के बाजार में तो लकड़ी का एक शहतीर भी नहीं बिका और बेटी दर्शनो कलाई की घड़ी माँगती है।
२ शिमले के बाजार को गये हुए ऊँट तो वापस आ गये हैं, लेकिन बेटी दर्शनो रबड़ के बूटों के लिए मचल रही है।
३. हमारे रहने की जगह बहुत नीची है, ऐ प्यारे! मुझे ऊँचा बंगला बनवा दे, यहाँ मेरा जो उदास रहता है।

देवर के रूठने पर भौजाई की बेचैनी देखिए :

चादर पुरानी
मेरे देवरे दी निशानी
देवरा मेरा रूसी रूसी जांदा, बल्या
अलबेलुआ, वो[१]

इसी गीत का एक और दिलचस्प बन्द देखिए :

फकड़ी दी रोटी
मेरी किस्मत खोटी
वागां दे झंजन मँगा दे वल्या
अलबेलुआ वो[२]

इन पहाड़ी स्त्रियों में मेलों में शामिल होने की बड़ी इच्छा होती है। इस सम्बन्ध में भी सी-पी के मेले में दो पद सुने। पहाड़ी युवती के हृदय में मेला देखने की कैसी प्रबल इच्छा होती है, वह 'लोका' के इन टप्पों से ज्ञात होगा :

मेला भरया वीरे कंजूरे दा
जाने जो दिल बोल्दा मेरा जी लोका[३]

और फिर देखिए मेले जाने से रोकने वाले को पहाड़ी युवती कैसे कोसती है :

जिसने जो पापिए मेले ते रोकी
उसनू पवे सराफ मेरा जी लोका[४]

---

१. यह चादर जो पुरानी है, यह मेरे देवर की निशानी है। इसे बाहर मत फेंको। क्योंकि मेरा देवर रूठ-रूठ कर जा रहा है।

२. मैं मंद भाग्य हूँ जो मुझे मक्की की रोटी खाने को मिल रही है। ऐ मेरे प्यारे ! मुझे वागों के चावल मँगा दो।

३. कंजूरे का मेला भर रहा है और मेरा जी वहां जाने के लिए वेताब हो रहा है।

४. जिस पापी ने मुझे मेले जाने से रोका है, उसे मेरा शाप लगे।

है

अकबर ने, सुनते हैं, अपनी हुस्नपरस्ती के लिए 'मीना बाज़ार का आयोजन किया था। 'नौ रोज़' के दिन शाही महलों के नीचे स्त्रियों का मेला लगता था। स्त्रियां ही प्रबन्ध करने वाली, स्त्रियां ही दुकानदार, स्त्रियां ही 'गुलफ़रोश,' स्त्रियां ही खोंचेवाली। एक अनुपम दृश्य होता होगा। एक नयी उपज थी—एकदम मौलिक ! कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुग़ल-सम्राट का वैभव और फिर राज-प्रबन्ध में मीना-बाज़ार का आयोजन—कितनी शान होगी, कितनी चकाचौंध होगी ! इस सब-कुछ में यदि अकबर की काम-वासना न होती, यह सब कुछ यदि अकबर के लिए महज़ एक तमाशा न होता, तो इसकी स्मृति सम्राट के नाम पर काला धब्बा न हो कर एक चिरस्थायी यादगार बन जाती....पर सम्राटों की पाप-वासनाएँ ! इनकी कहानी ही दूसरी है। यह सब कुछ इसलिए था कि वह अपने राज्य की सुन्दरतम युवतियों को अपनी वासनाओं का शिकार बना सकें। 'मीना बाज़ार' में जो युवती सम्राट की आंखों में चढ़ जाती, वह महलों में पहुंच जाती।

सी-पी में भी मीना बाज़ार लगता था। रियासत के प्रबन्ध में ही लगता था। केवल सभ्य और असभ्य का अन्तर था। वह एक-दो की आंखों की तृप्ति के लिए था। यह सहस्रों आंखों की तृप्ति के लिए। मेला भरते ही नये-नये कपड़े पहन पहाड़ी स्त्रियां कमर में तंग पाजामे, तन पर कमीज़ें, उन पर जाकेटें, सिर पर दुपट्टे, नाक में नथनियां, मांग में चांद, आंखों में

काजल, होंठों पर अनार अथवा कीकर की छाल का रंग—दल-के-दल बाँध कर मेला देखने आतीं। मेले में एक ओर को एक ऊँची जगह, मेले में आने वाली स्त्रियों के लिए सुरक्षित होती, जहाँ से राजा अपने अंग्रेज़ मेहमानों को ले कर निकलते। सी-पी में बाज़ार के एक ओर एक जँगले के अन्दर पहाड़ी पर सीढ़ियाँ-सी बनी हुई हैं। ठीक सरकस के आख़िरी दर्जे की तरह। इस पर पंक्तियों में आ कर पहाड़ी युवतियाँ बैठ जाती हैं और दर्शक इधर-उधर घूमते-फिरते उनकी ख़ूबसूरती से अपनी आँखों की प्यास बुझाते हैं। जैसा कि मैंने पहले कहा, नब्वे प्रतिशत लोग इसीलिए जाते हैं—कुछ यों ही उत्सुकता के कारण, कुछ महज़ दीदारबाज़ी के निमित्त और कुछ बिगड़े हुए किसी को पटा कर अपनी भूख मिटाने को। कहते हैं कि यहाँ स्त्रियों का व्यापार होता है। कहते हैं कि यहाँ बदमाशी होती है। कहते हैं कि स्वयं राणा साहब अथवा टिक्का साहब इनमें से सबसे सुन्दर रमणी को चुन लेते हैं....इन सब बातों में कहाँ तक सत्य है, इसे एक मेरे जैसा सैर के लिए आनेवाला क्या बतायेगा ? हाँ, नित्य इस मेले में आनेवालों के मुँह से जो कुछ सुना है, वह इस ज़माने में भी अकबर के ज़माने की याद ताज़ा कर देता है।

एक और बात है, जिसे मैं नहीं समझ सका। ये पहाड़ी युवतियाँ अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर उस मेले में आती हैं, जहाँ सरे-आम शराब के दौर चलते हैं, जहाँ दिन-दहाड़े जुए का बाज़ार गर्म होता है, जहाँ पंजाब-भर के गुण्डे इकट्ठे होते हैं, फिर ये स्त्रियाँ सूर्यास्त तक वहीं रहती हैं। कहीं मेले में घूम-फिर कर नहीं देखतीं, केवल बैठी रहती हैं—वैसे ही जैसे नुमायशी खिलौने। ये यहाँ आती हैं, इसका कारण भली-भाँति समझा जा सकता है। कुछ संध्या समय अपने गाँवों को चली

जाती हैं, लेकिन बाकी कहाँ जाती है ? क्या करती हैं ? इसका अनुमान ही किया जा सकता है। इधर की पहाड़ियों में सुनते हैं स्त्रियों की गति-विधि पर वैसी कैद नहीं। रुपये ले कर अपनी पत्नी को बेच देने की भी प्रथा आम है और प्रेमी के साथ किसी के भाग जाने पर प्रेमी से कुछ रुपये ले कर समझौता कर लेना भी इधर मामूली बात समझी जाती है। लेकिन सौंदर्य का यह बाजार ऐसे मेले में लगे और फिर रियासत के प्रबन्ध में और फिर वहाँ पंजाब के लाट जायें, इस नुमाइश का निरीक्षण करें, यही आश्चर्य की बात है। वहाँ जाने वाले अंग्रेज, भारतवर्ष की असभ्यता को किस ढंग से पेश करते होंगे, यही बात बार-बार मेरे मन में आती।

इस मीना बाजार में रियासत अथवा उसके कर्मचारियों को कोई लाभ न होता हो, यह बात नहीं। यदि सी-पी के मेले से, मीना बाजार उठा लिया जाता तो दूसरे दिन से से मेले में उल्लू बोलने लगते, फिर यदि कोई भूला-भटका मुसाफ़िर इन चौकीदार-नुमा रियासती सिपाहियों के हाथ लग जाता तो उस पर स्त्रियों को छेड़ने का अभियोग लगा कर उसकी जेबें किस प्रकार खाली की जातीं, इस बात का अनुमान वही लोग कर सकते हैं, जिन्हें उनसे वास्ता पड़ा है। मैं इन बातों पर विश्वास न करता था, लेकिन दुर्भाग्य से मेरे साथ जो घटना घटी, उससे मुझे न केवल इस बात का विश्वास हो गया, बल्कि इस बात का भी पता चला कि स्थिति कहीं ज्यादा भयानक है। इसका कारण क्या है, यह जानना कठिन नहीं। ब्रिटिश इंडिया में यद्यपि सिपाहियों के वेतन कम होते, उन्हें नियमित रूप से मिल तो जाते, पर भारत की रियासतों और विशेष कर [illegible] के इर्द-गिर्द की रियासतों की जो दशा थी, वह किसी से [illegible] नहीं। जब बड़े-बड़े कर्मचारियों को ही वेतन न मि[illegible]

सिपाही बेचारों की तो बात ही दूसरी है। वे इस मेले में जो कुछ हथिया सकें, वह सब कुछ उनका होता—अपने शिकार से अथवा उसके सम्बन्धियों तथा मित्रों से। सिवाय कुछ सिपाहियों के इन छोटी-छोटी रियासतों में बाकायदा पुलिस न रखी जाती और 'कोटी' भी इस सामान्य नियम का अपवाद न थी। इस मेले के समय जितने बेकार युवक कोटी में होते, सबको पुलिस की वर्दियाँ पहना दी जातीं। मेले का मेला देख जाते, चार दिन रोटी खा जाते और यदि कोई शिकार फँस जाता तो दो-दो रुपये जेबों में डाल कर घर चले जाते।

इस अंधेर-नगरी में पुलिस वाले मीना बाज़ार का क्या लाभ उठाते हैं, इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता। हाँ; इतने अधिकारों के होते हुए, वे चुप रहते हों, ऐसा हो नहीं सकता।

कि अब भी रोमांच हो आता है।

बात कुछ भी नहीं थी। फिरते-फिराते चार बज गये होंगे, तनिक भूख लग आयी, मिठाई और फलों का ख़याल भी आ गया। वापस मुड़ा। वहाँ गया, जहाँ खाना खाया था और पार्टी को छोड़ा था। देखा तो पार्टी ही ग़ायब। तीन-चार काग़ज़ इधर-उधर उड़ रहे थे और कुछ मक्खियों की भिनभिनाहट उस छोटी-सी ज़्याफ़त का हाल बता रही थी, जो हमने वहाँ उड़ायी थी। मैंने बहुतेरा इधर-उधर देखा, एक-दो से पूछा भी, पर पता न चला। पता भी कैसे चलता? पार्टी कुछ और आगे बढ़ कर पेड़ों के अगले झुंड की ओट में ताश खेल रही थी। मैं इस जगह से नितान्त अनभिज्ञ था। आगे कोई जगह है भी या नहीं, यह मुझे मालूम न था, प्राण भूख से निकले जा रहे थे। मैं फिर मेले की ओर फिरा। एक सिरे से दूसरे सिरे तक चक्कर लगाया कि पार्टी का एक भी आदमी मिल जाय तो पूछूँ, पर कोई भी तो नज़र नहीं आया। आख़िर जब भूख और तेज़ हुई तो फिर एक खोंचेवाले से मिठाई ले कर खाने लगा। मिठाई क्या, कुछ पेड़े और बर्फ़ी थी। और यद्यपि खोये में चीनी का अंश अधिक था तो भी इससे कुछ हानि होने की सम्भावना नहीं थी। साथ के बाज़ार में पूरियाँ बन रही थीं, पर जाने क्यों मुझे पूरियों से बेहद नफ़रत थी। मिठाई भी गरिष्ठ चीज़ है, लेकिन पूरियाँ तो मेरे लिए नितान्त अपाच्य हैं। कभी एक-दो खा लूँ तो फिर तीन दिन तक 'ईसबगोल' फाँकता रहता हूँ। ऐसी तबियत ख़राब होती है कि ख़ुदा की पनाह! अभी मुश्किल से बर्फ़ी का टुकड़ा दाँतों तले गया होगा कि 'हटो-बचो' की आवाज़ और लोगों की रेल-पेल ने मुझे वहाँ ला खड़ा किया जहाँ एक चौकीदार महाशय उस बाड़े की चौकीदारी कर रहे थे, जिसमें

पहाड़ी युवतियों की नुमाइश हो रही थी अथवा जहाँ बैठी हुई वे तमाशाइयों के मनोरंजन का सामान जुटा रही थीं। मैं उन चौकीदार साहब के पास जा कर खड़ा हो गया। कुछ यार लोग योंही यह नज़ारा देखने में व्यस्त थे। इतने में उँगलियाँ उठीं, आँखों ने आँखों में ही बातें की और दिमाग ने समझ लिया कि राणा साहब आ रहे हैं। अब उधर नज़र उठायी तो देखा राणा साहब जंगी लाट (कमाण्डर-इन-चीफ) मिस्टर वर्मा के साथ आगे-आगे और टिक्का साहब और मन्त्री महोदय उनकी अरदल में चले आ रहे हैं। उस वर्ष पंजाब के लाट शायद बीमारी के कारण मेले की रौनक नहीं बढ़ा सके थे, इसलिए जंगी लाट ही आये थे। उनके हाथ में वही बड़ा-सा वल्लम था और खाकी कोट और निकर पहने हुए थे। उनके साथ शायद उनकी धर्मपत्नी थीं, किन्तु निश्चय से नहीं कहा जा सकता, लड़की भी वह हो सकती थी।

राणा साहब, मन्त्री महोदय और टिक्का साहब को मैंने मशोबरे और सीपी पहुँचते ही देखा था। लेकिन पहली बार काफ़ी दूर से देखा था। अब वे एकदम सामने थे। राणा साहब काफी बूढ़े थे। दाढ़ी-मूँछें सफ़ाचट थीं। यद्यपि बाद में उनके फ़ोटो में उनके बड़ी-बड़ी मूँछें देखीं, लेकिन वह शायद जवानी का फ़ोटो था। उन्होंने एक जरदोज़ी का लम्बा चोगा पहन रखा था। उसके नीचे क्या था, यह मैं नहीं कह सकता। हाँ, कमर में चूड़ीदार पायजामा था। पैरों में पम्प-शू थे अथवा नोकदार जूते, मैं नहीं जान सका। भीड़ में उनके पैर दिखायी नहीं दिये। हाँ, सिर पर रेशमी पगड़ी थी, जो पण्डितों-जैसी बँधी थी। शमला टँगा हुआ था। टिक्का साहब कोई पैंतीस-चालीस के पतले छरहरे आदमी थे। मूँछें उनकी लम्बी थीं और उस वक्त ऊपर को उठी हुई थीं। उनकी काली ...

ोर चूड़ीदार पायजामा अब भी मेरी आँखों में घूम रहा है। ाजपूती तर्ज़ से बाँधे हुए इन्द्रधनुषी रंग से रँगे साफ़े की पेक्षा उनकी दर्प-भरी आकृति उनके टिक्का होने का ज्यादा कीन दिला रही थी। रहे मन्त्री महोदय, सो वे बेचारे अधेड़ ाम्र के, ठिगने कद के भले-से आदमी लगते थे। वेश-भूषा भी ानकी सीधी-सादी थी। सिर पर सरदई रंग का साफ़ा, सफ़ेद ाचकन और चूड़ीदार पायजामा। उनको देख कर कोई और ाहे कुछ समझ लें, लेकिन वे किसी राज्य के मन्त्री हैं, यह ाहीं समझ सकता। कम-से-कम मैं ऐसा नहीं समझ सका। उनके पीछे दो-एक रीडर थे — नीले ब्लेज़र के कोट और फ़लालैन की पतलूनें पहने, अच्छे खूबसूरत नौजवान थे।

राणा साहब जंगी लाट के साथ-साथ जा रहे थे। कुछ बातें भी करते जाते थे। तनिक दूर होने तथा भीड़ के बेपनाह शोर के कारण मैं सुन नहीं सका। अचानक मेरे मन में शंका जगी। राणा साहब अंग्रेज़ी में बातें न करते होंगे। ये शिमले से नौ मील की दूरी पर रहने वाले पुराने विचारों के पहाड़ी राणा, कितनी अंग्रेज़ी बोल सकते होंगे। उनके ज़माने में तो शायद चीफ्स कॉलेज की नींव भी न रखी गयी थी। फिर गेट पर स्वागत के समय अंग्रेज़ के साथ उन्होंने रीडर द्वारा बातचीत की थी और उसी ने दुभाषिये का फ़र्ज़ अदा किया था। टिक्का साहब इस ज़माने के आदमी थे। खासे लिखे-पढ़े लगते थे। पर यह वृद्ध राणा—उनके समय में तो शायद इन रियासतों तक अंग्रेज़ी की गन्ध भी न आयी होगी। तो फिर यह किस भाषा में बात-चीत कर रहे हैं? क्या उर्दू में? नहीं, राणा उर्दू अच्छी तरह न जानते होंगे। तो क्या पहाड़ी बोली में? शायद लाट पहाड़ी भाषा से अनभिज्ञ हों। तो फिर किस भाषा में बात करते हैं? मेरी उत्सुकता बढ़ी। वे आगे निकल

चुके थे । मैं उन चौकीदार साहब से पूछ बैठा ।

"क्यों जी यह आपके राणा कहाँ तक पढ़े होंगे ?"

वह महाशय नीली वर्दी डाटे, भ्रू-भंग किये, कदाचित ज़माने की नाकद्र-शनासी के हाथों तंग आये-से खड़े थे । क्रोध से बोले :

"तुम से मतलब ?"

"यों ही !"

"यों ही क्या ?"

मैंने उन्हें कुछ समझाने का प्रयास किया, लेकिन उन्होंने नहीं सुना और मुझे ज़ोर से धक्का दे दिया, "चल हट यहाँ से ।"

मैं गिरा, मेरा हैट धरती पर जा पड़ा । दर्शकों में एक ठहाका गूंज उठा । मैंने कुछ खिन्न होते हुए उठ कर कहा—"भाई, सीधी तरह बात करो, धक्का क्यों देते हो ?"

"चल....वे ! सीधी तरह लिये फिरता है ।"

गन्दी गाली ! मैं अपने-आपको काबू में न रख सका । मैंने उसे गले से पकड़ लिया ।

" मैं कहता हूँ तमीज़ से बात करो ।"

" चल तमीज़ के बच्चे ! " उसने मुझे फिर धक्का दिया । मैंने उसे फिर पकड़ लिया । उसने मेरे मुंह पर एक थप्पड़ जमाया मैंने छड़ी उठा ली । शायद एक जमायी या महज उठायी....। लेकिन दूसरे क्षण मैंने अपने-आपको दूसरे चौकीदारों के मध्य में घिरे हुए पाया । एक ने छड़ी छीन ली । दूसरे ने हंटर का वार किया । 'मार दिया, मार दिया !' का शोर मच गया । लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी । कुछ लोगों ने बीच में पड़ने का प्रयत्न किया । परन्तु दारोग़ा साहब, जो लगता है, जैसे इस मौके के लिए तैयार बैठे थे, लाल आंखें किये डट गये और सबको भगा

देने का हुक्म दिया।

"क्या बात है ?" उन्होंने सिपाही से पूछा। वह व्यक्ति जिसे मैं चौकीदार समझा हुआ था, वास्तव में सिपाही था। उन पहाड़ी सिपाहियों की वर्दियाँ मैदानी चौकीदारों-जैसी ही नीली थीं।

"यह लौंडा, वहाँ औरतों से मज़ाक कर रहा था। मैंने रोका तो मेरे चाँटे मारने लगा।" उसने कहा।

मैं इस बात पर संज्ञाहत-सा खड़ा रह गया। इतना झूठा अभियोग और मुझ पर ! क्रोध के कारण मेरे मुंह से बात न निकली। मैंने कुछ सफ़ाई पेश करने का प्रयास भी किया, परन्तु असभ्य सिपाहियों के दुर्व्यवहार के कारण मैंने न बोलना ही उचित समझा। इस धकड़-पकड़ में मेरी ऐनक भी कहीं गिर पड़ी थी और मुझे सब कुछ धुंधला-धुंधला-सा दिखायी देने लगा। उस समय किसी ने कहा, "इसे हथकड़ी लगा लो।"

"लगा लो !" मैंने क्रोध से कहा और हाथ आगे कर दिया। मेरे हाथ में हथकड़ी पड़ गयी।

अब सोचता हूँ कि उस समय यदि मैंने एक दुनियादार की तरह किंचित धीरज और शान्ति अथवा ख़ुशामद से काम लिया होता तो शायद मुझे वह रोमांचकारी कष्ट न सहना पड़ता, जिसकी याद शायद ज़िन्दगी-भर न मिटे, लेकिन मेरे जैसे भाव-प्रवण के लिए मौके की नज़ाकत को सोच कर बात

खैर, कहना यह चाहता हूँ कि मैं 'बेगुनाह क़ैदी' बना लिया गया और आगे-आगे मैं—एक हाथ में हथकड़ी और दूसरे में लटकता हुआ हैट—साथ में पाँच-छै यमदूत-सूरत सिपाही, पीछे शत-शत तमाशाइयों का हुजूम, कुछ इस शान से मेरा जुलूस निकाला गया। इस भीड़ में, जहाँ मैं कुछ देर पहले स्वतन्त्र घूम रहा था, उस तरह बन्दी की सूरत में चलना अखरा तो बहुत, आँखें भी झुक गयीं, लेकिन क्या किया जा सकता था, कहीं विदेशी कपड़े का बायकाट कराते हुए गिरफ्तार होता अथवा पत्र के किसी राष्ट्रीय लेख के सम्बन्ध में पकड़ा जाता तो सिर ऊँचा होता। पर कमबख्तों ने इल्जाम भी यह लगाया कि सिर उठाने के काबिल न छोड़ा। कौन भलामानुस सहस्रों की भीड़ में अपने आपको चरित्रहीन कहलायेगा और फिर अकड़ कर चलेगा।

उस समय, जब मुझे नीचे के बाजार से लाया गया था, एक व्यक्ति ने जिसकी दुकान जरा नीचे थी, मुझसे सहानुभूति दिखाते हुए मेरे हाथों में टूटी हुई ऐनक और उसका एक शीशा दे दिया। उसकी दुकान पर मेरी ऐनक गिरी थी। यह भी अच्छा हुआ कि ऐनक टूट गयी, नहीं तो शायद तमाशाइयों के हँसते हुए चेहरों को देख कर मुझसे चला भी न जाता।

# आठ

"अरे, वो तो मास्टरजी जा रहे हैं।" भोलानाथ ने मुझे इस हालत में जाते हुए देख कर कहा, और चाहे उन्होंने मेरी हथकड़ी का ज़िक्र तक न किया तो भी उनका कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि समस्त पार्टी की निगाहें मेरी ओर उठ गयीं। मैंने भी कुछ अश्रुपूर्ण आँखों से उनकी ओर देखा और दूसरे क्षण सारी पार्टी ने मुझे घेर लिया। वे सिपाही, जो अपने एक भाई के अपमान का बदला चुकाते हुए, एक प्रकार से मुझे धकेलते लिये जाते थे, एक क्षण के लिए भौंचक्के-से खड़े हो गये। मुझे भी कुछ धीरज बँधा। पार्टी, जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, पेड़ों के झुंड के पीछे ताश खेल रही थी और सौभाग्यवश हवालात को रास्ता उसी ओर से हो कर जाता था, नहीं तो यदि उन्हें मेरा पता न चलता, तब न जाने जितनी परेशानी हुई, उससे कितनी ज्यादा परेशानी उन्हें होती? और यदि इस घटना से पहले, मैं उन्हें ढूँढ़ता हुआ ज़रा और आगे बढ़ जाता तो यह घटना ही न घटती, लेकिन मालूम होता है, ऐसा होना ही था और जो होना हो उसे कौन रोक सकता है !

लाला जी यद्यपि एक निकर और कमीज़ पहने हुए थे और उन्हें देख कर कोई न कह सकता था कि वे पंजाब सरकार के एक उच्च पदाधिकारी हैं, पर बड़े आदमियों के चेहरों पर न जाने कैसी चिकनाई और कैसा जलाल होता है, उनके हय कहने में 'क्या बात है भई' कुछ ऐसी बात थी कि सब खड़े

हो गये । कुछ उखड़े-उखड़े शब्दों में मैंने अपनी दास्ताने-ग़म बयान की, पर मेरी घबराहट, क्रोध और दुःख और कुछ असाधारण परिस्थिति ने मेरे मुंह से ठीक शब्द भी नहीं निकलने दिये । सिपाहियों को इतने देर तक बड़े दारोगा ने, जो मुझे हवालात को ले जाने की आज्ञा से कब से मेरे को आ रहे थे, एक ललकार दी, "ले जाओ और हवालात में बन्द कर दो !" लाला जी उन दारोग़ा साहब की ओर बढ़े, सिपाही मुझे ज़बरदस्ती हवालात को ले चले। जाते-जाते मेरे कानों में मंझले दारोग़ा की कर्कश आवाज़ आयी, "आप डिप्टी साहब से मिलिए ।"

हैं, उनका निर्णय आखिरी होता है। मुझे डेढ़-दो महीने जेल की सज़ा भी दी जा सकती है और सौ-दो सौ रुपया जुर्माना भी। जेल में बहुत तकलीफ़ होती है और पंजाब सरकार की जेलों के कष्ट उसके सामने गर्द हो कर रह जाते हैं।

मैं चुपचाप उनकी कहानी सुनता गया और मुझे निश्चय हो गया कि अब जान मुश्किल से ही बचेगी। मैं उसी समय डेढ़-दो सौ रुपया दे न सकता था और क़ैद की राम जाने—इस पतले-दुबले शरीर में उन कष्टों को सहने की शक्ति है या नहीं, इसका अनुभव नहीं था। शायद ऐसी क़ैद में, जिसका उसने हाल सुनाया, चन्द दिन में ही आत्मा और शरीर का नाता टूट जाय। सिपाही ने बताया कि बाबू साहब यहाँ ज़रा-से अपराध पर तो अभियुक्त को काठ मार देते हैं, फिर बड़े अपराध की तो बात ही क्या। और यह काठ मारना—इसका हाल सुन कर ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। लकड़ी के दो तख्तों में अभियुक्त की टाँगें रख कर उन्हें कस दिया जाता है और असह्य पीड़ा से अभियुक्त तड़पता है। लालजी ने आते-आते मुझे जो सान्त्वना दी थी, 'घबराइएगा मत !' उससे दिल को तसल्ली तो थी, पर इस बायीं आँख को कौन समझाये जो उस दिन इतनी फड़की कि उम्र-भर न फड़केगी और दिमाग़ ने ऐसे भयानक चित्र बनाये कि ख़ुदा की पनाह !

हवालात आ गयी और हम सब एक क्षण के लिए रुके। मेले से कोई एक-डेढ़ फर्लांग की दूरी पर नीचे खड्ड में, राणा साहब के अस्थायी निवास-स्थान से कुछ पग और नीचे, यह हवालात थी। हवालात बाहर से एक झोंपड़ी-सी मालूम होती थी—साधारण पहाड़ी छप्पर-ऐसी ! उसके आगे थोड़ी-सी खुली जगह थी और उसके बाद फिर खड्ड थी, जिसमें केलू, तोस, बाँझ के पेड़ों का जंगल था और नीचे के गाँवों को जाने वाली

पगडण्डियाँ उन घने पेड़ों में खो गयी थीं। बाहर से देखने पर कौन कह सकता था कि सीधी-सादी झोंपड़ी में ऐसी हवालात है कि मनुष्य को असह्य यन्त्रणा देने में कोई भी शहरी हवालात इसका मुकाबिला न कर सके।

मेरे साथी सिपाही मुझे इस छप्पर के अन्दर ले गये। अन्दर जाने पर मालूम हुआ कि यह सिपाहियों के अस्थायी तौर पर रहने की जगह है। मेले का प्रबन्ध करने के लिए रियासती पुलिस का जो जत्था कोटी से सी-पी आता, वह इसी छप्पर में रहा करता था। वहाँ सिपाहियों के बिस्तर गोल किये हुए पड़े थे, कुछ सिपाही बैठे थे। फ़र्श लकड़ी के तख़्तों का बना हुआ था। एक चारपाई भी थी, वह कदाचित बड़े दारोगा की थी। मैंने माथे का पसीना रूमाल से पोंछा और एक सिपाही से कहा, "भई मेरी हैट कहीं टाँग दो!"

"हम तुम्हारे बाप के नौकर तो नहीं।"

मैं चुप खड़ा रह गया। छप्पर के अन्दर प्रवेश करते समय मैं अपनी अवस्था को क़तई भूल गया था—भूल गया था कि मैं एक क़ैदी हूँ—स्वतन्त्र पत्रकार या एक आज़ाद अध्यापक नहीं। कुछ थकावट-सी महसूस हुई। इसीलिए वहीं फ़र्श पर बैठ गया। अपनी इस हालत पर मेरे आँसू आ गये। लेकिन मैंने बरबस उन्हें अन्दर-ही-अन्दर पी लिया।

"इधर बैठ जाओ! एक दूसरे सिपाही ने, जो किंचित सहृदय दिखायी देता था, फ़र्श पर पड़े हुए एक कम्बल की ओर संकेत करते हुए कहा। लेकिन मैं नहीं उठा। अभी न जाने और कौन-सा उपहास, कौन-सा निरादर सहना शेष था। इसलिए मन को पहले से तैयार करना जरूरी था। और मैंने उस क्षणिक दुर्बलता को हटा कर मन को मजबूत बना लिया। अभी छोटे दारोग़ा साहब के आने की प्रतीक्षा हो रही थी।

इसलिए सिपाही आपस में बातें करने लगे। बोली पहाड़ी थी, लेकिन मैं दूसरी बार शिमले आया था, इसलिए उनकी बातचीत को भली-भाँति समझता था।

बातचीत का सिलसिला उस सिपाही ने आरम्भ किया, जिसने मुझे कम्बल पर बैठने के लिए अनुरोध किया था। कहने लगा, "बाबू बेकसूर लगते हैं।"

एक दूसरा सिपाही बोला, "क्यों बे तैंने गाली क्यों दी थी ?" सम्बोधन उस व्यक्ति की ओर था, जिसने मेरे साथ झगड़ा किया था।

"मैंने गाली कब दी, इन्होंने मेरे थप्पड़ रसीद किये।" उसने कहा।

"जा बे, इन बाबू साहब का सिर फिरा है जो यह थप्पड़ लगाते। बेचारे भले घर के आदमी हैं।"

वह कुछ लज्जा से सिर झुका कर खड़ा रहा।

उनकी बातों से मेरे मन को कुछ सान्त्वना मिली। आखिर यहाँ सब पशु ही नहीं, यहाँ भी मानवता का वास है। मुझे कुछ चिन्तित देख कर उनमें से फिर एक बोला, "बाबू जी, आप चिन्ता न करें। आप ज़रूर रिहाई पा जाएँगे।" मैंने मुस्कराने की असफल चेष्टा की। तभी खट-खट जूतों की आवाज़ सुनायी दी और दूसरे क्षण नायब दारोगा साहब छोटे-से दरवाज़े से सिर झुका कर अन्दर आये और मेरे सामने एक गोल किये हुए विस्तर पर बैठ गये। मैं उनका नाम नहीं जानता, पर उनकी सूरत मेरे दिल पर सदा के लिए अंकित हो गयी। पतला-सा शरीर, जो दुबला होने के कारण कुछ लम्बा दिखायी देता था, लम्बी नाक, लम्बूतरा मुंह, यदि सिर ज़रा छोटा होता तो वे

अन्दे-खासे दौले शाह के चूहे[१] दिखायी देते । खाकी वर्दी, कमर में अफ़सरों वाली पेटी, सिर पर खाकी-लाल पट्टी का साफा! इस वेश-भूषा, अफ़सरी की मस्ती और मेले के कारण मुरा पर आये हुए क्रोध ने अवश्य उनके चेहरे में कुछ सुन्दरता पैदा कर दी थी, नहीं तो उनकी सूरत तो कुछ ऐसी थी जैसे जन्म-जन्मान्तर से रोते आये हों और ज़िन्दगी से बेतरह बेज़ार हों।

आते ही उन्होंने मेरी तलाशी का आदेश दिया। एक सिपाही ने बाक़ायदा मेरी तलाशी ली। एक घड़ी, कुछ नकदी, पॉकिट बुक, एक-दो काग़ज़ मेरी जेब से बरामद हुए और फ़र्द-बरामदी की ज़ीनत बने। घड़ी शायद वे लिखना ही भूल गये और बदहवासी में मुझे भी ध्यान न रहा। सूची तैयार हुई। हस्ताक्षर कराये गये, मैंने समझा, चलो जान बची। यहाँ काफ़ी जरह है, तीन दिन तक लाला जी कुछ-न-कुछ मदद करेंगे। परन्तु जब दारोगा के साथ आने वाले दो आदमियों में से एक ने दरवाज़े के पास ही फ़र्श से एक लकड़ी का तख्ता उठाया तो मेरा हृदय धक-धक करने लगा।

१. पंजाब में एक पीर की कब्र है जिसे साईं दौलेशाह की कब्र कहते हैं। जिन लोगों के सन्तान नहीं होती वे यह मन्नत मानते हैं कि वे पहला लड़का या लड़की साईं दौलेशाह को भेंट कर देंगे। जब बच्चा पैदा हो जाता है तो उसे मन्नत के अनुसार उस पीर के मुजाविरों के हवाले कर देते हैं। वे बच्चे के सिर पर लोहे का टोप चढ़ा देते हैं, जिससे बाकी अंग तो बढ़ जाते हैं, पर सिर छोटा ही रहता है। ऐसे लड़के तथा लड़कियाँ भीख माँगने के काम आते हैं और दिमाग़ उनका प्रायः अविकसित ही रह जाता है। जिसका सिर उसके शरीर की अपेक्षा बहुत छोटा हो, उसे भी दौलेशाह का चूहा ही कहा जाता है।

हँसते हुए दारोग़ा साहव ने कहा, "वावू साहव को गर्मी वहुत जल्दी आ जाती है, अव तवीयत ठंडी हो जायगी।"

मेरे देखते-देखते, एक आदमी उसमें उतरा। लगता है उसके पाँव धरती पर लग गये, लेकिन सिर अभी वाहर दिखायी देता था। आशंका हुई कि कहीं यह अँधेरा भूगृह (तहखाना) ही यहाँ की हवालात न हो और इसमें मुझे फ़ैसले तक वन्दी न रहना पड़े।

वही हुआ जिसका मुझे डर था। उस व्यक्ति ने वाहर निकल कर कहा, "अँधेरे और ठंड का राज है, यहाँ तो वेचारा मर जायगा।"

"होश भी तभी ठिकाने आयेंगे, इसे गर्मी भी कुछ ज़्यादा ही चढ़ी है।" दारोग़ा ने कहा।

मैं उठा। मन में आया कि मिन्नत-समाजत करूँ, पर इन नरपिचाशों से मिन्नत। मैं चुपचाप वढ़ा। भूगृह के मुख पर आया तो दिल काँप उठा। सिर से पैर तक सिहरन-सी दौड़ गयी। लगा जैसे ज्वालामुखी के मुँह पर खड़ा हूँ और अन्दर शीत नहीं, आग धधक रही है। एक सीढ़ी भी पड़ी थी जो वृक्ष के एक साधारण से तने को एक-एक गज़ के फ़ासले पर पाँव रखने के लिए तराश कर वनायी गयी थी।

जानते हुए भी मैंने पूछा, "इसमें मुझे रहना पड़ेगा।"

"और क्या तुम्हारे लिए राणा साहव के महल खाली कराये जायँगे?"

मैं खिन्न हो कर रह गया। 'इनसे वात करना वेवकूफ़ी है,' मैंने मन-ही-मन कहा। 'राणा के महल कोई वड़ी वात न थी। यदि मैं स्वतन्त्र रूप में राणा से मिलने आता तो शायद ऐसा ही होता, लेकिन भाग्य ने आज मेरे हथकड़ी डलवा दी थी और अव मेरे लिए यही काल-कोठरी निर्धारित थी!' मैं

उतरा। भूगृह बहुत नीचा न था। मेरे पाँव धरती पर थे और गर्दन बाहर। शीत इतना था कि शरीर काँप उठा। गर्मी के कारण सूती कोट, कमीज और निक्कर पहने हुए था। धरती नमदार थी। मैं चुप रहना चाहता था, पर कह बैठा, 'बैठूंगा किस जगह, धरती तो गीली है।

"तुम्हारे लिए गालीचे कहाँ से लाये जायें ?" दारोग़ा ने कहा—

मैंने कहा—"फिर भी कुछ तो चाहिए, कपड़ा न सही, कागज सही।"

मेरी प्रार्थना पर एक पत्र का पृष्ठ ला दिया गया, हिन्दी का कोई दैनिक पत्र था। मैं दरवाजे से आने वाले प्रकाश के सहारे चन्द क़दम जा कर, एक लकड़ी के खम्भे के पास कागज बिछा कर बैठ गया।

"बस अब बन्द कर दे।" ऊपर से आवाज़ आयी।

"खुला नहीं रह सकता ?" मैंने पूछा।

"नहीं।"

"पर यहाँ ठंड बहुत है, मुझे कम्बल चाहिए।"

"बड़े दारोगा के आने पर कहना।"

इसके बाद दरवाज़ा बन्द हो गया। तहखाने में घटाटोप अंधेरा हो गया। दूर—बहुत दूर—गाने-बजाने का बहुत हल्का शोर सुनायी दिया। मैं सिकुड़ कर नंगी टाँगों को बाहों से घेर कर और सिर को घुटनों में दे कर बैठ गया।

उस समय देर से रुकी हुई आँसुओं की दो बूँदें मेरे घुटने पर बह चलीं।

## नौ

दरवाज़ा फिर खुला।

मेरे विचारों का तार टूट गया। इस थोड़े समय में न जाने दिमाग़ गत-आगत के बारे में क्या-क्या न सोचा गया—एक की स्मृति मन में हूक-सी पैदा कर देती थी, दूसरे का ध्यान दिल में आतंक का संसार बना देता। अभी कुछ देर पहले जो व्यक्ति इस विशाल पृथ्वी पर स्वतन्त्र विचर रहा था, जिसे इन पहाड़ियों पर सैर करने की, उनके निर्माता की कारीगरी को देखने की, उस पर मुग्ध होने की पूरी-पूरी आज़ादी थी, अब वह एक पंखहीन पंछी की तरह इस अँधेरे पिंजरे में बन्द था। पंछी भी शायद उससे अच्छे हाल में होगा। उसे कुछ रोशनी तो देखने को मिलती होगी, पर यहाँ तो सूचीभेद्य अंधकार था। इसी अंधकार में बैठा मैं सोचने लगा कि लाला जी की कोशिशें असफल रही होंगी और वे फिर ताश खेलने में जा लगे होंगे अथवा मुझे वहीं छोड़ उदास-से घर चले गये होंगे। मेरे घर पर तार दे देंगे। इससे ज़्यादा वे कर ही क्या सकते हैं। भाई साहब तार मिलते ही शिमले पहुँचेंगे। लेकिन इस बीच में मैं इस काल-कोठरी की भेंट हो चुकूँगा अथवा कोटी की किसी गन्दी अँधेरी जेल में पड़ा सड़ूँगा। निराशा में अनिष्ट मनुष्य के समीप आ जाता है और इष्ट मृगमरीचिका की तरह दूर होता चला जाता है और आशा, बिजली के अस्थिर कौंधे-सी निमिष-भर चमक कर काले बादलों में गुम हो जाती है। मेरे सामने बाहर का चित्र खिंच गया। मेला उसी प्रकार

भरा हुआ है। लाहौर के छात्र, जो बी० ए० की परीक्षा दे कर आये हुए थे और जिनकी टोली बरड़ियों के परे बैठी गा रही थी—

'वहाँ ले चल मेरा चरखा
जहाँ चलते हैं हल तेरे'

अब भी वैसे ही बैठे मस्ती से गीत अलाप रहे हैं। पँगूड़े उसी प्रकार चल रहे हैं। बरड़ियाँ उसी प्रकार गा रही हैं और हमारी पार्टी फिर उसी प्रकार ताश खेलने लगी है। सब मेले में हैं, केवल मैं उस राग-रंग से दूर इस तारीक, अँधेरी कोठरी में बन्द कर दिया गया हूँ।

प्रकाश की कुछ किरणें भूगृह की तारीकी को भेद कर मुझ तक पहुँच गयीं, पर मैंने इस ओर नहीं देखा। असीम निराशा ने मुझे नितांत उदासीन-सा बना दिया था। मुझे आशा ही नहीं थी कि मैं जल्दी छोड़ दिया जाऊँगा। इस निराशा से एक अजीब-सा वैराग्य पैदा हो गया था।

"अजी ओ बाबू साहब!"

कोई शिष्ट सिपाही लगता था, पर मैं नहीं बोला। फिर भी वही स्वर सुनायी दिया, "अजी ओ बाबू साहब!"

"क्या बात है?"

"इधर आओ।"

मैं बड़ी मुश्किल से उठा, पर लकड़ी की नीची छत से सिर फूट जाने के भय से झुका-झुका ही दरवाजे पर पहुँचा। इन दो निमिषों में ही न जाने आशा ने कितने प्रासाद खड़े किये और निराशा ने कितने गिराये। कभी कल्पना करता, लालाजी ने टिक्का साहब से मिल कर मेरी रिहाई का आयोजन कर दिया है और टिक्का साहब ने अपने नौकरों की भूल महसूस करके मुझे तुरन्त रिहा करने का आदेश दे [illegible]

उस समय दरबार का दृश्य मेरी आँखों के सामने घम जाता—टिक्का साहब मुझे सत्कार-सहित रिहा कर रहे हैं—पर दूसरे क्षण यह आशा निराशा में परिणत हो जाती और मैं देखता कि मैं कोटी जेल में पड़ा सड़ रहा हूँ।...

*मैं झरोखे के समीप आ कर खड़ा हो गया।*

बाहर ऊपर के दरवाज़े में एक सुन्दर-सा बारह-वर्षीय बालक खड़ा था—लाल उन्नाबी रंग की चमचमाती हुई पगड़ी, गोरा, भरा हुआ मुख, गले में ब्लेज़र का कोट, कमर में निकर, पैरों में मोज़े और बढ़िया बूट ! मैं पहली नज़र में ही भाँप गया कि यह टिक्का साहब के कुँवर हैं और मेरा खयाल ठीक था। ऊपर भूगृह के मुँह पर खड़े हुए सिपाही ने कहा—"कुँवर साहब आये हैं, जो पूछते हैं बताओ !"

आप भी पूछ लीजिए। अब तो दरबार का भंगी भी आये तो जो पूछे उसे बताना होगा। मुझे कुछ रुलाई-सी आ गयी।

"तुम्हें क्यों पकड़ा गया है ?" बच्चे ने सरलता से पूछा।

मैंने उसकी ओर देखा। वह कुछ मुस्करा रहा था, पर उसकी मुस्कराहट में व्यंग्य न था और न था तिरस्कार। उसमें सहानुभति थी। मैंने कहा—

"तुम्हारे सिपाहियों ने पकड़ लिया।"

"क्यों पकड़ लिया ?"

"यह उनसे पूछो।"

"वे कहते हैं तुमने सिपाही के मुँह पर थप्पड़ लगाया।"

"उसने गाली दी।"

"तुम हमसे कहते।"

इस बात का कोई उत्तर न था। शायद कुँवर ठीक कहता था। क्या उत्तर देता, कैसे उसे समझाता कि परिस्थिति ही ऐसी थी, जब समझ और सोच की शक्तियाँ शिथिल हो जाती

हैं, मनुष्य का धीरज जवाब दे जाता है। ऐसे में आदमी क्रोध को अपना पथ-प्रदर्शक बना कर उसके पीछे हो लेता है, फिर वह चाहे उसे पहाड़ की चोटी पर उड़ा ले जाय, चाहे गहरे खड्ड में गिरा दे।

कुँवर चला गया। मैं फिर अपनी जगह आ बैठा। झरोखा बन्द कर दिया गया और फिर वही अँधेरा और मैं।

इतनी देर तक लकड़ी के स्तम्भ का सहारा लिये रहने से मेरे दायें कन्धे में दर्द होने लगा। अब मैं पहलू बदल कर और तनिक हट कर बैठ गया। पहली बार मैंने इस अँधेरे को चीरने का प्रयास किया। उस समय मुझे लगा जैसे मैं इस अँधेरे में भी देख सकता हूँ। मैंने और भी ध्यान से आँखें फाड़-फाड़ कर देखा। इस बार मुझे कुछ दूर इस तहखाने की दीवार दिखायी दी। मैं उठा, कुछ पग टटोल-टटोल कर चला। एक दूसरे स्तम्भ से मेरा सिर टकरा गया। इस अँधेरे में वर्षों से इसी प्रकार नमी में रहने से उस स्तम्भ पर, जो किसी वृक्ष की बेढंगी-सी मोटी शाख से बनाया गया था, कुछ नर्म-नर्म-सी वस्तु जम गयी थी—शायद काई है—मैंने सोचा। कुछ और कदम चलने पर दीवार आ गयी। मिट्टी की सीली-सीली दीवार, छू कर देखा तो लेप-के-लेप हाथ लगाते ही झड़ गये। मैं अंधे की तरह टटोलता हुआ दीवार के साथ-साथ कुछ कदम बढ़ा। ऊपर फिर कुंडी खुलने की आवाज़ सुनायी दी। मैं फ़ौरन अपनी जगह आकर बैठ गया। दरवाज़ा खुला, सिपाही का कर्कश स्वर, "दारोग़ा साहब आये हैं।"

मैं कहना चाहता था, 'मैं क्या करूँ,' पर अपनी स्थिति का ध्यान करके चुप रहा और एक हाथ में पड़ी हुई हथकड़ी दूसरे हाथ से सम्हालते हुए फिर झरोखे के पास सीढ़ी से कुछ दूर आ कर खड़ा हो गया।

वाहर वड़े दारोग़ा खड़े थे। कोई पचास वर्ष की उम्र होगी, वड़ी-वड़ी मूँछों के कारण चेहरे से रोव टपकता था और आँखें चढ़ी हुई-सी थीं।

"क्यों कैसे हो ?"

"अच्छा हूँ।"

"अव होश ठिकाने आये या नहीं ?"

"किसके होश ?"

"दारू तो नहीं पिया है ?"

"मैंने ?"

"और क्या मैंने ?"

दारू आपने पिया हुआ है—मैं यह कहना चाहता था, परन्तु अपने क्रोध को रोक कर वोला—"मैं नशे के निकट नहीं जाता।"

"फिर लड़कियों से मज़ाक क्यों किया ? सिपाही को चाँटे क्यों लगाये ?"

"मैंने दोनों में से कोई वात भी नहीं की।"

"सिपाही को तुमसे वैर था, जो तुम्हें गिरफ़्तार कर लिया। मैंने स्वयं तुम्हें उसके गले को पकड़े देखा है।"

"उसने गाली दी थी।"

"क्यों दी थी ?"

"मैंने उससे पूछा था कि तुम्हारे राणा कहाँ तक पढ़े हुए हैं ?"

"और यह भी पूछा होगा कि यहाँ स्त्रियों का व्यापार होता है, राणा साहव जिसे चाहते हैं, चुन लेते हैं।"

"यह आप कहते हैं, मैं नहीं कहता, मैंने ऐसी कोई वात नहीं पूछी।"

"फिर यह वात क्यों पूछी थी ?"

"राणा बूढ़े हैं, मेरे विचार में उनके समय में अंगरेज़ी पढ़ाने का कोई प्रबन्ध न होगा। उन्हें अंगरेज़ लाट के साथ जाते देख कर मुझे ऐसा खयाल आया कि पूछूँ, वो जंगी लाट से किस भाषा में बात करते हैं?"

"अच्छा आगे को दारू पी कर मत मेला देखने आया करो!"

मैं जल उठा। समझा था, यह आदमी मुझसे सहानुभूति रखता है, इसलिए सब कुछ सुनाता चला गया। नहीं तो एक शब्द तक ज़बान पर न लाता। अब मालूम हुआ कि यह महाशय मुझे पूरा अपराधी समझे हुए थे।

"और किसी चीज़ की ज़रूरत है?"

"यहाँ सर्दी बहुत है, बदन अकड़ा जाता है।"

"कम्बल मिल जायँगे! और कुछ?"

"मैं अपने मित्रों से कुछ क्षण के लिए मिलना चाहता हूँ।"

"नहीं मिल सकते, पर तुम्हें जिस चीज़ की ज़रूरत हो, हमें बताओ!"

"शायद भूख लगे।"

"बहुत अच्छा, खाने को आ जायगा।"

"दारोग़ा साहब के कहने पर मुझे दो कैदियों वाले कम्बल मिल गये। वे ही जिन्हें हम छूना भी पसन्द न करें, पर आज वही ज़िन्दगी का साथ बनाये रखने का सहारा थे। मैंने उस छोटे-से झरोखे से आने वाले प्रकाश की रेखा में एक कम्बल बिछा लिया और लकड़ी के एक स्तम्भ का सहारा ले कर एक कम्बल से घुटने ढांप, चुपचाप बैठ गया, पर सर्दी कम न हुई। यह भूगृह सचमुच शीत-गृह था और सर्दी [illegible]
बन कर नसों में दौड़ती जा रही थी। मैंने क

"दो कम्बल काफ़ी नहीं।"

"तुम्हारे लिए कम्बलों का कारखाना तो नहीं खोला हुआ है।"

तभी खटखट की आवाज़ आयी । मैंने समझ लिया कि दारोग़ा साहब चले गये हैं और अब असभ्य सिपाहियों का सामना है, इसलिए चुप ही रहा। वह सिपाही स्वयं ही बोल उठा—

"यह दारोग़ा साहब की कृपा समझिए कि दो कम्बल मिल गये हैं, वरना यहाँ ऐसे लोग आते हैं, जिनके कपड़े तक उतरवा लिये जाते हैं।"

मेरा शरीर काँप उठा और मैं अपनी हैट को सिरहाने रख कर सोने की कोशिश करने लगा ।

"चौकीदार साहब ! जब स्वयं भगवान विष्णु को होनहार के डर से पानी में छिपना पड़ा तो फिर हम-तुम किस बाग की मूली हैं। इस बाबू बेचारे का सितारा गर्दिश में है। नहीं तो यह भला क्या किसी को छेड़ता।"

मैंने ध्यान से सुना। ऊपर शायद मेरे सम्बन्ध में ही बात-चीत हो रही थी। मेला चूंकि सांझ ही को भरता है, इसलिए सिपाही तो सब जा चुके थे, हाँ चौकीदार रह गया था। वही उस समय शायद किसी से बातें कर रहा था।

चौकीदार ने कहा, "हाँ गोविन्द, सब भाग्य का दोष है। लड़की को यह क्या छेड़ता, यह काम तो वे लोग करते हैं, जो हमेशा यहाँ के हालात से वाकिफ हैं और फिर मुझे तो चूनी ने बताया जो पहरे पर था और जिससे झगड़ा हुआ कि छेड़-छाड़ कुछ नहीं, बात यह हुई कि उसने इसे हटाया, यह हटा नहीं, उसने गाली दी, इसे जोश आ गया और बस !"

गोविन्द शायद बाहर बैठा था और आग ताप रहा था और शायद जाति से भी वह नीच था। हँस कर बोला—"इन बाबू साहब को ही दरगुज़र कर देनी चाहिए थी। गाली का क्या है, यह तो हम गँवारों के मुँह में आम चढ़ी हुई है, कोई पढ़ा-लिखा गाली देता तो चाहे ये जितना क्रोध कर लेते।"

मुझे अपनी ग़लती अब मालूम हुई। अब तक मैं उस सिपाही को अत्याचारी अन्यायी, ज़ालिम, झूठा और न जाने क्या-क्या समझ रहा था। अब जो देखा तो दोष मेरा ही

निकला ।

चौकीदार बोला, "भाई, इसमें न सिपाही का कसूर है, न इस बाबू का । सब दोष बुरे ग्रहों का है । इस बाबू का सितारा चक्कर में है । बेचारा मुसीबत में फँस गया ।...

फिर कुछ क्षण ठहर कर लम्बी साँस छोड़, चौकीदार ने कहा—"हम पर भी गोविन्द ऐसी ही बुरी दशा आ गयी थी । और तब जो कष्ट हमें सहने पड़े, उनकी स्मृति-मात्र से आज भी रौंगटे खड़े हो जाते हैं।।"

मैं ध्यानपूर्वक चौकीदार की कहानी सुनने लगा । गोविन्द भी शायद पाँव पसार कर आराम से बैठ गया । कुछ क्षण रुक कर और एक लम्बी साँस भर कर चौकीदार ने अपनी कहानी शुरू की ।

o

"हाँ तो गोविन्द, मेरे साथ भी ऐसी ही दुर्घटना घटी थी और वह भी इसी मेले में । उस समय टिक्का साहब बहुत छोटे थे । अब तो उनकी आयु भी चालीस वर्ष होगी और मैं तो साठ-सत्तर का हो चला हूँ । मेला तब भी खूब भरता था । यहाँ आने वाली युवतियों की संख्या भी अधिक होती थी । और नाच-रंग भी ख़ूब होता था ।

"मैंने मेला कभी न देखा था । था तो मैं इधर ही का रहने वाला, पर बचपन ही से अपने दादा के पास लाहौर चला गया था । वहाँ पन्द्रह वर्ष एक बाबू के यहाँ नौकर रहा, फिर उसने मुझे जवाब दे दिया । बात कुछ भी न थी । मुझसे कोई अपराध भी न हुआ था, पर मेरा उम्र में बड़ा हो जाना ही मेरे लिए बुरा हुआ । वहाँ भले आदमी नौजवान नौकरों को घर में नहीं रखते । मैंने और दो-एक जगह नौकरी करने का प्रयास किया और एक-दो जगह नौकरी पाने में सफल भी हो

गया, पर मेरा मन न लगा। मैं अपने गाँव लौट आया। मन उदास भी था और चंचल भी। इतने दिनों तक शहर के पिंजरे में बन्द रहने के बाद गाँव की आजाद फिजा में साँस लेने का अवसर मिला था, पर शायद मेरा मन पिंजरे मे रहने का अभ्यस्त हो गया था, मुझे उस आजादी में भी शहर की याद आती थी, लेकिन गोविन्द, आजादी के अपने गुण है, आदमी उन्हें भी जल्दी जान लेता है। मैं भी गाँव में आ कर खिल उठा। मेरी सारी उदासी और बेचैनी दूर हो गयी। यहाँ ठंडे पेड़ों के नीचे, ठंडी-ठंडी हवा में, बाँसुरी बजाने में वह आनन्द आता था जो लाहौर की सख्त गर्मी अथवा सख्त सर्दी में, स्वप्न मे भी न आ सकता था। बाँसुरी मुझे दादा ने सिखायी थी। लाहौर में उसे बजाने का अवसर ही न मिला था और यहाँ गाने-बजाने के सिवा दूसरा काम ही न था। मै बाँसुरी मे फूँक देता तो मीठी, मद-भरी तान दूर-दूर घाटियों को गुंजा देती।

"गाँव में आने पर मुझे एक और बात का भी आभास हुआ। वह यह कि मैं अब किसी का नौकर नहीं, किसी की इच्छाओं का गुलाम नहीं, बल्कि सब बन्धनों से मुक्त हूँ। हमारी थोड़ी-सी भूमि थी, उसको जोतना-बोना मैंने शीघ्र ही सीख लिया। लाहौर में मैं हेय समझा जाता था, यहाँ मैं मग का एरण्ड था। जिधर से गुजर जाता, सब की नजरें मुझ पर उठ जातीं। सब मुझे श्रद्धा की दृष्टि से देखते। सब मुझे अपने से बड़ा समझते। जब मैं गाँव में आया तो घर-घर मेरी चर्चा हुई। कई युवतियों की नजरें भी मुझसे चार हुई। मुझे इन निगाहों में प्रेम के सन्देश भी मिले। पर मन कहीं नहीं अटका। मैं अपनी खेती-बाड़ी में मग्न और बाँसुरी की तानों में मस्त रहा।

"ठिठुरता शीत बीता और प्राणों को गर्मा देने वाल

आ गया । मई का महीना था । इन दिनों शिमले में वर्षा नहीं होती । मई और सितम्बर ही के महीने हैं, जिनमें इधर की पहाड़ियों का आनन्द लिया जा सकता है । सूरज में तनिक गर्मी आ जाती है और ·उसकी सुनहरी धूप से पतझड़ की सिकुड़ी हुई पहाड़ियाँ जिन्दगी की अँगड़ाई ले कर खिल उठती हैं । इन दिनों मैं काम न किया करता था । खेती-बाड़ी का काम अपने बड़े भाई पर छोड़ कर स्वयं ही ढोर-डंगरों को ले कर निकल जाता । सारा-सारा दिन गायें चराता । सन्ध्या को दूध दुहता और संजौली जा कर उसे बेच आता । मुझे केवल प्रातः और सन्ध्या दूध दुहने और बेचने का ही काम करना पड़ता था । वरना मैं एकदम स्वतन्त्र अपने ढोरों को चराता घूमता । थक जाता तो पेड़ों की घनी छाया में बैठ कर बाँसुरी की तान छेड़ देता ।

"इन्हीं दिनों मूर्तू से मेरी भेंट हुई । शाम का वक्त था । मुझे कुछ देर हो गयी थी । इसलिए जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ संजौली को जा रहा था कि मुझे किसी ने आवाज़ दी, 'भैया, तनि ठहरना ।'

"मैंने पीछे मुड़ कर देखा । पास के गाँव से आने वाली पग-डंडी से एक युवती कन्धे पर दूध के डिब्बे लटकाये, गले में धारी-दार गबरून की कमीज़, उस पर जाकेट, कमर में काली सुथनी, पाँव में खाकी रंग का फ्लीट और सिर पर गुलाबी दुपट्टा बाँधे शपाशप बढ़ी चली आ रही है । उसकी नाक में छोटी-सी लौंग थी । उस शाम के धुँधलके में मुझे उसकी सूरत बहुत भली लगी—भोली-भाली, सीधी-सादी ! जब तक वह मेरे बराबर न आ गयी, मैं उसे मन्त्र-मुग्ध-सा देखता ही रहा ।

"निकट आने पर मालूम हुआ, उसे भी दूध देने संजौली जाना है और अँधेरा हो जाने से वह कुछ डर-सी रही है ।

सहम के कारण उसकी हिरनी की-सी आँखें खुली थीं और जल्दी-जल्दी चलने से सीना धड़क रहा था। मैंने उसे तसल्ली दी और हम दोनों संजौली की ओर चल पड़े। कुछ देर चुप चलते रहे। लेकिन साँझ का सुहाना समय, ठंडी-ठंडी बयार, सुन्दर पहाड़ी दृश्य, मार्ग का एकान्त—कोई अकेला हो तो चुपचाप लम्बे-लम्बे डग भरता चला जाय। हम दोनों में धीरे-धीरे बातें होने लगीं। शुरू किसने किया याद नहीं, लेकिन संजौली पहुंचते-पहुंचते हम घुल-मिल गये। आते समय भी हम इकट्ठे ही आये। उसने कहा था—मैं दूध दे कर नल के पास तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करूंगी और जब मैं वापस फिरा तो वह मेरा इन्तज़ार कर रही थी। अँधेरा बढ़ चला था, हम बेधड़क चलते आये। बातों में मार्ग की दूरी कुछ भी नहीं जान पड़ी। जो रास्ता पहले काटे न कटता, अब पता भी न चला और खत्म हो गया। जब हम वहाँ पहुँच गये, जहाँ से हमें जुदा होना था, तो मेरा दिल सहसा धड़क उठा। मैंने साहस करके कहा—'अँधेरा ज़्यादा हो गया है। मैं तुम्हें तुम्हारे घर तक छोड़ आता हूँ। फिर अपने गाँव को चला जाऊँगा।' वह मान गयी। मैं उसे उसके घर तक छोड़ने गया। उसके घर के समीप हम जुदा हुए। उसकी आँखों में कृतज्ञता थी। अलग होते समय उसने धीरे से पूछा—'तुम रोज उधर जाते हो क्या ?'

'हाँ।'

'और तुम।'

'मैं भी।'

"बस इसके बाद वह पीठ मोड़ कर अपने घर की ओर चल दी। मैं ज़रा तेज़ी से वापस फिरा, पर शीघ्र ही मेरी चाल धीमी हो गयी और मैं अपने ध्यान में मग्न चलने लगा। जब चौंका तो देखा कि घर पहुँचने के बदले संजौली के समीप पहुँच

गया हूँ। फिर वापस मुड़ा। घर पहुँचा तो देर हो गयी थी। भाई को चिन्ता हो रही थी; मेरे पहुँचते ही प्रश्नों की बौछार उन्होंने मुझ पर कर दी। मैंने कहा—मेरा लाहौर का एक मित्र मिल गया था। उसका घर देखने चला गया था। जाते-आते देर हो गयी। वे सन्तुष्ट हो गये।

"गोविन्द, उस रात मुझे नींद न आयी। सारी रात उसकी हिरनी-सी आँखें, उसकी सुन्दर-सलोनी सूरत, उसका गुवला-गुवला पर सुडौल शरीर, उसका पहाड़-सा वक्ष, उसकी मस्तानी चाल, उसकी मीठी-मीठी बातें, उसका सादगी से पूछना, 'तुम रोज़ उधर जाते हो क्या?'—उसकी हर अदा मेरी आँखों में नाचती रही, उसकी हर बात मेरे कानों में गूंजती रही। एक-दो बार मैंने अपनी परिचित लड़कियों से उसकी तुलना की। कोई असाधारण बात न थी उसमें। शायद उससे भी अधिक सुन्दर रमणियाँ हमारे गाँव में थीं। पर न जाने उसमें क्या था, उसकी आँखों में क्या जादू था, उसकी चाल में कौन मोहनी थी, उसकी बातों में कैसी मिठास थी? मैं दीवाना-सा हो गया। वह दिन मेरे सारे जीवन की निधि है, जिसकी याद आज भी मेरी तन्हाइयों में मेरा साथ देती है।

"दूसरे दिन हम फिर उसी जगह मिले। मैंने उससे मिलने के लिए कोई ख़ास कोशिश नहीं की। अपने निश्चित समय पर चल पड़ा, तो भी हम उसी स्थान पर मिल गये। शायद वह भी कुछ देर पहले चल पड़ी थी। पहले दिन की तरह फिर हम इकट्ठे सँजोली गये, फिर मैं उसे घर तक छोड़ने गया, फिर उसी प्रकार उल्लास से वापस आया। हाँ, आज एक और बात का पता ले आया। वह भी दिन को अपनी गायें चराया करती थी, पर दूसरी घाटी में। दूसरे दिन मेरी गायें भी उसी घाटी की ओर जा निकलीं, जैसे अचानक। पहले वह तनिक झिझकी,

लेकिन जब मैंने अपनी गायों को वापस मोड़ना चाहा तो उसने कहा—'इस घाटी में घास खूब अच्छी है।' मैं रुक गया। उससे अच्छी घास कहाँ मिलती ? इसके बाद हम प्राय: रोज साथ ही गायें चराते, साथ ही दूध ले कर सँजोली जाते और साथ ही वापस आते। बाँसुरी का शौक भी उन दिनों कुछ बढ़ गया। रात को प्राय: मैं अपने इधर की पहाड़ी पर, अपने घर के बाहर ऊँची-सी जगह बैठ कर, बाँसुरी बजाया करता। एक शब्द में कह दूँ, गोविन्द, मुझे उससे मुहब्बत हो गयी थी। जिस दिन मैं गायें ले कर पहले पहुँच जाता और वह देर से आती, उस दिन मेरे हृदय में सहस्रों आशंकाएं उठने लगतीं। यही हाल उसका था। धीरे-धीरे हमारे प्रेम की बात गाँव में फैल गयी। मेरे भाई और उसके माता-पिता को पता चल गया। उन्होंने हमारी सगाई कर दी। मेरी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। परन्तु मेरे इस सुख में एक दुख का काँटा भी था। यह जान कर कि उसे मेरी पत्नी बनना है, मूतूं ने मुझसे मिलना छोड़ दिया था। मैं व्यर्थ ही अब अपने ढोर ले कर उस घाटी में जाता, जहाँ वह अपनी गायें चराया करती थी। बेकार ही उस चट्टान पर घंटों बैठा रहता, जहाँ हम दोनों बैठे गीत गाया करते थे। बेमतलब रात को बाँसुरी बजाया करता। उसकी सूरत बिलकुल न दिखायी देती। दूध देने को अब उसका छोटा भाई जाता। मैं उससे मूतूं की बातें पूछा करता। कभी वह सरल, अबोध बालक मुझे उत्तर देता और कभी मेरी बातें उसकी समझ में न आतीं।

"इसी प्रतीक्षा में कुछ सप्ताह बीत गये। लेकिन मेरी बेचैनी कम न हुई। मैं मूतूं की सूरत तक को तरस गया, उसे देखने के लिए मेरे सारे प्रयास असफल हुए। दिन खिल उठे। हमारे विवाह की तिथि भी नियत हो गयी। प

बेचैनी नहीं घटी ।"

०

चौकीदार ने एक लम्बी साँस ले कर कहा, "तुम पूछोगे गोविन्द, जब मैंने मुहब्बत के कई सुनहले सवेरे और शामें उसके साथ गुज़ारी थीं और अच्छी तरह देखा-भाला था और जब उसे मेरे घर आना ही था तो फिर उसे देखने की बेचैनी क्यों! मैं स्वयं ठीक-ठीक इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। बात शायद यह थी कि जिस दिन से हमारी मँगनी हुई थी, उसी रोज़ से वह मेरी आँखों से ओझल हो गयी थी और मैं सगाई के बाद उससे कई तरह की बातें करना चाहता था। यह बात जानने के बाद वह कैसी बातें करती है, उसका मुख लज्जा से कैसे लाल-लाल हो जाता है, कैसे उसका स्वर काँपने लगता है—मैं इस सब का आनन्द लेना चाहता था और भावी जीवन के सम्बन्ध में पहले से ही उसके साथ कुछ बातचीत कर रखना चाहता था। लेकिन उसने तो जैसे अपने घर से बाहर निकलने की सौगन्ध खा ली थी। मैं लाख इधर-उधर चक्कर लगाता, लाख बाँसुरी में आने का चिरपरिचित सन्देश देता, पर वह न आती।

"उन्हीं दिनों सी-पुर का मेला आ गया। मेरी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। मेले में वह जरूर जायेगी, इसका मुझे पूरा विश्वास था और फिर कहीं रास्ते में उसे देख पाना और अवसर पा कर उससे दो बातें कर लेना असम्भव नहीं था।

"मैं कई दिन पहले से ही मेले की तैयारियाँ करने लग गया। दूध बेचने पर जो कुछ बचता, उसमें से भैया कुछ मुझे भी दे देते थे। धीरे-धीरे यह रकम जमा होती गयी और मेरे पास पचास रुपये हो गये। मैंने इनसे एक ख़ाकी कोट और बिरजिस बनवायी, अच्छे से बूट का जोड़ा ख़रीदा, अच्छी-सी धारीदार गबरून की दो कमीज़ें सिलवायीं, दो रूमाल लिये,

बारीक मलमल का इन्द्रधनुषी रंग का साफा रँगवाया और जब मेले के दिन पूरी तरह सज कर पठानों की तरह मैंने कुल्ले पर नोकदार साफ़ा बाँधा और उसके तुर्रे का फूल बना कर शीशे में देखा तो गर्व से मेरा सिर तन गया और चेहरा लाल हो गया।

"रेशमी रूमाल को कोट के ऊपर की जेब से रख कर, कमीज़ के कालरों को कोट पर चढ़ा कर, हाथ में छोटा-सा चमड़े का हण्टर ले कर जब मैं मेले को रवाना हुआ तो गाँव के सब स्त्री-पुरुष मुझे निर्निमेष तकते रह गये। मुझे देख कर कौन कह सकता था कि यह रोज सुबह-शाम दूध ले कर सँजौली जाने वाला ग्वाला है और इसका काम गायें चराना और उनकी सेवा करना है ?

"मार्ग में एक पानी की सबील थी। योंही कच्ची मिट्टी और पत्थरों से तीन दीवारें खड़ी करके उन पर टीन का छप्पर डाल दिया गया था। छप्पर पर बड़े-बड़े पत्थर रखे थे कि तेज़ हवा से वह कहीं उड़ न जाये। इस प्रकार बनी हुई वह कोठरी एक ओर से एकदम खुली थी। कोई किवाड़ वगैरा भी नहीं था। इस ओर एक बड़ा-सा पत्थर रखा था, जहाँ एक अधेड़ आयु की स्त्री पानी पिला रही थी। यह मूर्तू के गाँव की बुढ़िया तुलसी थी। अपनी चुस्ती और चालाकी के लिए वह आस-पास के गाँवों में प्रसिद्ध थी। मैं उस सबील पर आ कर रुका, प्रकट कुछ सुस्ताने के लिए, लेकिन मेरी हार्दिक इच्छा वहाँ रह कर मूर्तू की बाट जोहना थी।

"वह सबील, सड़क के दायीं ओर केलू के वृक्षों के झुंड में बनी हुई थी। रास्ते के इस ओर कुछ ढलान थी। पहाड़ पर नीचे को सीढ़ियाँ-सी बनी हुई थीं और गायों के इधर-उधर चलने से छोटी-छोटी-सी पगडंडियाँ दिखायी देती थीं। मैं

के एक ओर मार्ग की तरफ़ पीठ करके नीचे को टाँगें
कर बैठ गया। साफ़ा उतार कर मैंने पास ही पड़े हुए
ों पर रख दिया। लेकिन मुझसे देर तक इस तरह बैठा
गया। मैं तुलसी से कुछ बातें करना चाहता था। पानी
के बहाने उठा और वहाँ पहुँचा। पानी पीने ही लगा था
उसने व्यंग्य का तीर छोड़ा :

'पानी से प्यास क्या मिटेगी, चाहे मनों पी जाओ। जिसे
खने की प्यास है, वह अभी इधर से नहीं गुज़री।'

''अब छिपाना व्यर्थ था। मैंने रहस्य-भरे स्वर में धीरे से
पूछा — 'आज मेला देखने तो जायेगी ?'

'शायद।'

'सहेलियाँ साथ होंगी ?'

'हाँ !'

'फिर मैं कैसे उससे बात कर सकूंगा ?'

'केवल देखने से प्यास नहीं बुझ सकती ?'

'नहीं।'

''बुढ़िया चुप रही।

मैंने गिड़गिड़ा कर पूछा—'तुम प्रबन्ध न कर दोगी ?'

''बुढ़िया का हँसता हुआ पोपला मुँह मेरी ओर उठा।
उसकी आँखें चमकने लगीं। वह बोली, 'कैसे ?'

'मैं वहाँ पेड़ों के झुंड में बैठा हूँ। तुम कह देना, तुम्हा
एक सहेली वहाँ तुम्हारी बाट जोह रही है। उससे मि
आओ।'

'नहीं, मैं यह नहीं कर सकती।'

''मैंने कुछ कहने के बदले जेब से एक रुपया निकाल
बुढ़िया के सामने रख दिया। उसने शायद अपनी सारी
में रुपया न देखा था। उसकी बाँछें खिल गयीं। कहने

'अरे यह क्या करते हो ? इसकी क्या जरूरत है ? भेज दूँगी उसे । आखिर वह तुम्हारे ही घर तो जायगी ।'

"मेरा मन खिल उठा । इतनी जल्दी यह काम बन जायगा, इसकी मुझे आशा नहीं थी । पानी पी कर मैं अपनी जगह आ बैठा और उसके आने की घड़ियाँ गिनने लगा । पाँव की जरा-सी चाप भी मूर्त्तं के आने का सन्देह जगा देती और मेरी आँखें सबील की ओर उठ जाती, लेकिन हर बार निराश हो कर लौट आती । प्रतीक्षा के ये क्षण युगों से लगे । बार-बार देखता, बार-बार ताकता । कहीं रँगे हुए दुपट्टे की तनिक-सी झलक भी दिखायी देती तो दिल धड़कने लगता । यही अच्छा था कि जहाँ मैं बैठा था, वहाँ से मैं तो सबको देख सकता था, पर मुझे कोई न देख पाता था ।

"आखिर मुझे उसकी आवाज सुनायी दी । तुलसी उसे मेरी ओर आने को कह रही थी और वह सुन्दरता-सी, सुषमा-सी, भोलापन-सा बनी पूछ रही थी । मेरा दिल बेतरह धड़क रहा था । कहीं वह अपनी सहेलियों को साथ ले कर ही न आ जाय और इस 'प्रतीक्षा करने वाली सहेली' का भेद न खुल जाय ! पर नहीं, वह अकेली आयी । हवा में उसका दुपट्टा उड़ रहा था, चमकी का चमकता हुआ कुर्ता उड़ रहा था, वह स्वयं उड़-सी रही थी । मेरे निकट आ कर वह भौंचक्की-सी खड़ी हो गयी और क्षण-भर बाद स्वर्ण-स्मित उसके अधरों पर चमक उठी और वह वापस मुड़ने लगी । मैंने उसे पकड़ लिया और क्षणिक आवेश में उसे अपने प्यासे आलिंगन में ले कर उसके अधरों को चूम लिया । उसका मुख अरुण हो कर रह गया और वह मेरी बाहों के घेरे से मुक्त होने के लिए छटपटाने लगी । मैंने अपना रेशमी रूमाल उसकी जेब में ठूँस दिया और उसे आजाद कर दिया । वह भाग गयी । न मैं कुछ कह सका,

कितनी बातें सोची थीं, कितने मनसूबे बाँधे थे, लेकिन
र मिलने पर एक भी पूरा न हुआ।
"वह अपनी सहेलियों के साथ चली गयी। अपने मुख की
ली, अपने अस्त-व्यस्त दुपट्टे, अपनी घबराहट का कारण
सने अपनी सहेलियों को क्या बताया, यह मुझे ज्ञात नहीं।
किन उसके चले जाने के बाद मैंने साफ़ा सिर पर रखा और
पेड़ों के झुंड से बाहर निकल आया। मेरे होंठ अभी तक जल
रहे थे और हृदय बेतरह धड़क रहा था।"

०

चौकीदार ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और बोला—"गोविन्द,
हमारा गाँव सँजौली और मशोबरे के रास्ते में है। सँजौली
वहाँ से कोई दो मील होगी। सबील तनिक आगे थी। मैं
तुलसी से बिना मिले ऊपर को चल पड़ा। सड़क पर पहुँच कर
मशोबरे की ओर देखा। मूतूं अपनी सहेलियों के साथ दूर
निकल गयी थी। मैं सिर झुकाये चल पड़ा। मन-प्राण पर
उदासी-सी छा गयी। उस समय मैं इसका कारण न समझ
सका, पर बाद की घटनाओं ने बता दिया कि वह उदासी
अकारण न थी। मूतूं से मिलने के बाद मेरे मन में प्रसन्नत
का जो तूफ़ान आया था, वह उड़-सा गया। होना इस
विपरीत चाहिए था। लेकिन हुआ ऐसा ही। खुशी से तेज़-
चलने के बदले मैं धीरे-धीरे चलने लगा। मन में आशंका उ
मूतूं नाराज़ न हो गयी हो! अब मेले में उससे आँखें
मिला सकूंगा? दिल में चोर बस गया था और इच्छा
थी, मेले में न जाऊं। लेकिन नहीं, मुझे तो जाना था
दिल में तो उसे एक नज़र और देखने का लोभ बना हु
और इस लोभ को मैं किसी तरह संवरण न कर सका
गया।

"मेले में पहुँचते-पहुँचते मेरे सब सन्देह दूर हो गये। मूर्त मुझे मेले से जरा इधर ही मिली। वे सब सुस्ता रही थीं। प्रकट ऐसा ही लगता था, परन्तु मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे वह असल में मेरी बाट देख रही थी। मुझे देखते ही मुस्करा दी। उसकी आँखें नाच उठीं। मेरा मन विभोर हो उठा। उसी समय मेरे गाँव का साथी मेरे पास से गुजरा। मैंने उसे आवाज दी। वह वहीं खड़ा हो गया।

'किधर जा रहे हो?' मैंने जोर से पूछा।

'मेले को,' उसने उत्तर दिया।

'किधर रहोगे!'

'घूम-फिर कर देखेंगे।'

'हम तो भई वही आखिरी पेड़ों के झुंड के पीछे डेरा लगायेंगे। उधर आ सको तो आना।' मैंने मूर्त की ओर देख कर कहा। बातें मैं साथी से कह रहा था, पर संकेत मूर्त को था। साथी चला गया, वह मुस्करा दी। उस समय वह चलने के लिए उठी। मैं भी जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता सो-पुर पहुँच गया।"

०

"मेला खूब भर रहा था। मैं थका हुआ था। तनिक विश्राम करने का ठिकाना देखने लगा। आकाश पर बादल छाये हुए थे और मन का सारा ताप हरने वाली ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। मैं उस जगह के पीछे, जहाँ आज चाय का खेमा लगा है, जा कर बैठ गया। न जाने कितनी देर तक वहाँ बैठा कल्पनाओं के गढ़ बनाता रहा। लाट अथवा किसी दूसरे पदाधिकारी के आने पर जब बाजों की ध्वनि वायु-मण्डल में गूँज उठी, तो मेरी विचारधारा टूटी। मैं अपने जाने मूर्त की प्रतीक्षा कर रहा था। पर यह न सोचा कि अब उसे इस स्थान का

तो वह यहाँ आयेगी कैसे ? यह ध्यान आते ही उठा। इधर-उधर घूमता वहाँ पहुँचा, जहाँ स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। मूतूँ एक सिरे पर बैठी थी। मैं उसके सामने से गुज़रा, पर उसकी आँखें किसी दूसरी ओर थीं। मैं एक ओर हट कर खड़ा हो गया और इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि वह मेरी ओर देखे। उस समय मैंने देखा कि एक और पुरुष भी मूतूँ की ओर प्रेम-भरी निगाहों से देख रहा है और उन निगाहों में कुछ अजीब-सी भूख है। वह था कोटी का दारोग़ा। क्रोध और ईर्ष्या के कारण मेरी आँखों में ख़ून उतर आया। लेकिन अपने-आपको सम्हाल कर मैं वहीं खड़ा रहा। उधर उस नर-पिशाच की निगाह बराबर मूतूँ के सुन्दर मुख पर जमी रही।

"आखिर मूतूँ की आँखें मुझसे चार हुई। मैंने उसे हाथ से आने का संकेत किया। उसने इशारे से मुझे स्वीकृति दी। शायद दारोग़ा ने भी हमारे इशारेबाज़ी को देख लिया। दूसरे क्षण मैंने उसकी ओर देखा और उसने मेरी ओर। उसकी आँखों में ईर्ष्या थी, शायद विद्वेप भी। मैंने इसकी परवाह न की और फिर एक बार मूतूँ की ओर देख कर उसके सामने ही पेड़ों की ओट में हो गया। कुछ ही देर बाद वह आ गयी—चंचलता, उल्लास, प्रसन्नता की जीवित मूर्ति ! मैंने कहा— 'मूतूँ, तुम तो दिखायी नहीं देतीं, ईद का चाँद हो गयी हो।'

'और तुम्हारा कौन पता चलता है ? मैं उस झुंड के पीछे देख कर हार गयी।'

'पर मैं तो उधर था।'

'मैं कैसे जान सकती थी ?'

मैंने उसका हाथ थाम लिया। कहा—'चलो छोड़ो इस झगड़े को। इन चार घड़ियों को बहस में क्यों खोयें ?' हम

पेड़ों की ओट में चले गये। निकट ही मेले में आये हुए लोगों का शोर कुछ स्वप्न-संगीत-सा प्रतीत होता था। अपनी बातों में मग्न, हम मेले और उसमें होने वाले राग-रंग को भूल गये। उन कुछ क्षणों में न जाने हमने भविष्य के कितने प्रासाद बनाये। पेड़ों की उस ठंडी छाया में, मदभरी हवा में, उस लालस-लालस एकान्त में, मूर्तू मुझे मूर्तिमती सुन्दरता दिखायी दी और मैंने एक स्वर्गीय आनन्द से विभोर हो कर उसे अपनी ओर खींचा। उसी वक्त हमारे सामने किसी की गहरी छाया पड़ी। मैंने चौंक कर पीछे की ओर देखा। वही दारोग़ा ईर्ष्या और क्रोध से भरी आंखों से मुझे घूर रहा था। मैं तन कर उसके सामने खड़ा हो गया। मूर्तू भी बैठी न रह सकी।

"इस औरत को किधर भगाने की कोशिश कर रहे हो ?' उसने मूर्तू का बाजू पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए कहा।

"मेरी आंखों में खून उतर आया। मैंने कड़क कर कहा—'इसे हाथ मत लगाओ !'

'क्यों, तुम्हारे बाप की क्या लगती है ?'

'मेरी मँगेतर है।'

'चल मँगेतर के साले ! जरा राणा के पास चल, सब पता लग जायगा कि यह तेरी मँगेतर है या आशना ? यहाँ मेला देखने आते हो या बदमाशी करने ?'—यह कहते-कहते उसने वासना-भरी भूखी निगाह मूर्तू पर डाली। वह खड़ी थर-थर काँप रही थी। क्रोध के मारे मेरी बाहें फड़कने लगीं। मैंने एक हाथ से मूर्तू को उसके पंजे से छुड़ाया और दूसरे से जोर का थप्पड़ उसके मुँह पर रसीद किया। उसने गाली दी और हंटर से प्रहार किया और सीटी बजायी। मुझे क्रोध तो आया हुआ ही था। मैंने हंटर उसके हाथ से छीन कर दूर खड्ड में फेंक दिया और कमर से पकड़ कर उसे धरती पर दे मारा।

"एक चीख और बीसियों लोग उधर दौड़ पड़े। आगे-आगे कई सिपाही थे। आते ही उन्होंने मुझ पर हंटरों की वर्षा कर दी। मेरा गर्म खून भी खौल उठा। यों चुपके-से पराजय स्वीकार करना मुझे स्वीकार न हुआ। मैंने हमला करने वालों में से एक को पकड़ लिया और सिपाहियों की परवाह न करते हुए उसे खड्ड में ढकेल दिया। फिर एक दूसरे की बारी आयी। उसे भी खड्ड में गिरा दिया। सिपाहियों ने सहायता के लिए सीटियाँ बजायीं। और लोग आ गये। मुझ पर चारों ओर से प्रहार होने लगे। मेरे शरीर से रक्त बह निकला। फिर भी मैं उस समय तक लड़ता गया, जब तक बेहोश नहीं हो गया।"

०

"जब होश आया," क्षण-भर रुक कर चौकीदार ने कहा, "तो मैंने अपने आपको नीचे की हवालात में पड़े पाया। इस अँधेरे और एकान्त में मेरा दम घुटने लगा। मूर्तू के साथ क्या बीती, इस विचार ने मेरे मन को अधीर कर दिया। भूत में क्या हुआ और भविष्य में क्या होगा, इन विचारों ने मेरे मस्तिष्क को घेर लिया। मेरा अंग-अंग दुख रहा था, लेकिन मुझे अपने दुख की अधिक चिन्ता न थी। दुख था तो मूर्तू की जुदाई का।

"दूसरे दिन सिपाही मुझे राणा साहब के आगे पेश करने को लेने आये, पर मुझसे तो उठा न जाता था। तीन दिन तक इसी नरक में पड़ा रहा। फिर कोटी ले जाया गया। वहाँ तनिक आराम आने पर मेरा मामला पेश हुआ। मुझ पर मेले से एक स्त्री को भगाने का प्रयास करने और सिपाहियों को उनके कर्त्तव्य से रोकने तथा पीटने का अभियोग लगाया गया। शिकायत करने वाला ही निर्णायक था। मुझे डेढ़ साल क़ैद की सज़ा मिली। मेरे भाई के सब उद्योग, सब मिन्नतें वृथा

गयीं । वे मुझसे मिल तक न पाये ।"

चौकीदार दीर्घ-निःश्वास छोड़ कर बोला—"गोविन्द, शुक्र है, उन्होंने मुझे काठ नहीं मार दिया, नहीं तो वे यही दंड देते तो कौन उन्हें रोक सकता था ? इस डेढ़ वर्ष में मैंने जो कष्ट उठाये, वे अकथनीय हैं । यही समझ लो कि जब मैं डेढ़ साल के बाद अपने गाँव पहुँचा तो मेरा भाई भी मुझे न पहचान सका । मैं शायद डेढ़ साल बाद भी वहाँ से छुटकारा न पाता, यदि वह दारोग़ा वहाँ से रियासत के किसी दूसरे भाग में न बदल जाता । गाँव में आने पर मुझे मालूम हुआ कि मूर्तू भी उस मेले से नहीं लौटी । वह निश्चय ही उस दारोग़ा और दूसरे कर्मचारियों की पाप-वासनाओं का शिकार बनी होगी, इस बात का मुझे पूरा विश्वास था और मेरा यह सन्देह सच भी साबित हुआ—जब एक साल पश्चात् स्वस्थ होने पर मैं लाहौर गया तो मैंने धोबी-मण्डी की टकिहाइयों में मूर्तू के दर्शन किये । वह एक बहुत छोटे-से घिनौने मकान में रहती थी । मैं उसके पास कई घण्टे तक बैठा रहा । उसने मुझे अपनी मर्मस्पर्शी कहानी सुनायी । किस तरह उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो कर दारोग़ा अथवा दूसरे कर्मचारियों ने उस पर अनर्थ तोड़े और किस प्रकार अपने अत्याचारों का भण्डा-फोड़ होने के भय से उन्होंने उसे छोड़ दिया, किस तरह अपने सतीत्व को लुटा कर वह अपने गाँव में जाने का साहस न कर सकी और किस तरह पेट की ज्वाला ने उसे धोबी मण्डी में आ बसने को बाध्य किया ।"

०

चौकीदार की आवाज़ भर्रा गयी । वह कहने लगा—"यह कहते-कहते गोविन्द, वह रो पड़ी । मैं भी रोने लगा । मैंने उसे अपने साथ चलने को कहा, पर वह राज़ी न हुई । आते समय उसने

मेरे सामने एक रेशमी रूमाल रख दिया और रोती हुई बोली :

'आज तीन साल से मैंने इसे सम्हाल कर रखा है, पर यह पाकीज़ा रूमाल अब मुझ-सी अपवित्र नारी के पास नहीं रहना चाहिए। इसे अपनी दुलहिन को भेंट कर देना।'

"उसके स्वर में कुछ ऐसी दृढ़ता थी कि मैं इनकार न कर सका और वहाँ से चला आया।"

०

ऊपर कमरे में निस्तब्धता छा गयी। शायद कंठावरोध के कारण चौकीदार चुप हो गया था।

कुछ क्षणों के बाद गोविन्द ने पूछा—"तो आप इस नौकरी पर कैसे आये ?"

"यह बात पूछने से क्या लाभ ? भाग्य का चक्कर था, इधर ले आया।"

"फिर भी ?"

चौकीदार ने धीरे से कहा, "अब तो बताने में कोई हानि नहीं। वास्तव में उस नर-पिशाच दारोग़ा से बदला लेने की प्रबल-इच्छा से शिमले आया था। मेरे लिए मूर्तू ही सब कुछ थी। मैंने अपने जीवन में केवल उसी से प्रेम किया। इसके बाद मैंने विवाह भी नहीं किया। जिस दारोगा ने इस तरह हम दोनों को जुदा कर दिया, मैं उसे सस्ते दामों न छोड़ना चाहता था। लेकिन भगवान ने मुझे उस नीच के लहू से अपने हाथ रँगने से बचा लिया। मेरे आने के दो दिन बाद ही वह सड़क पर चला जा रहा था कि वर्षा के कारण पहाड़ का एक बड़ा-सा भाग टूट कर उस पर गिरा और वह अपने गुनाहों को अपने साथ लिये सदा को संसार से चला गया। इसके बाद दिल में कुछ और आरज़ू ही न रही, इसलिए यहीं बना रहा।"

गोविन्द ने एक लम्बी सांस ली । बोला, "भाग्य के खेल हैं, चौकीदार जी ! जिस प्रकार विधाता रखे, रहना चाहिए ।"

बाहर सिपाहियों के मजबूत जूतों की खड़बड़ाहट का शब्द सुनायी दिया और कई सिपाही कमरे में दाखिल हो कर सोने की तैयारी करने लगे। गोविन्द उसी समय वहां से खिसक गया ।

## बारह

...हरा सन्नाटा और मैं।

ऊपर कुछ ही देर बाद सब सो गये। चारों तरफ़ ख़ामोशी छा गयी। मेरी सब आशाएँ मिट गयीं। मैंने चौकीदार से पूछा था—'मैं कब रिहा हूँगा।' उसने मुझे सान्त्वना दी थी, 'बाबू, तुम्हारे लिए बड़ी कोशिश हो रही है। अव्वल तो अभी, नहीं तो सवेरे तुम ज़रूर छोड़ दिये जाओगे।'....अब मैं रिहा न किया गया था, सवेरे की राम जाने और यह रात—इस नारकीय कोठरी में, कैसे कटेगी? मैं सिहर उठा।

रात के साथ सर्दी और भी बढ़ गयी थी। पिस्सू, जो अभी तक मुझ पर कृपा-भाव बनाये हुए थे, अब सब तरफ़ से पिल पड़े थे। मैंने टाँगों को आराम देने के लिए ज़रा पसारा, कोई ठंडी-सी लिजलिजी चीज़....और मेरा समस्त शरीर काँप उठा। साँप—एक निमिष के लिए मस्तिष्क में वह लम्बी भयानकता सरसरा गयी। मैंने जल्दी से पाँव सिकोड़ लिये। हथकड़ी छनछना उठी। मैं हँसा। एक बे-आवाज़-सी हँसी। मैं जिसे साँप समझा था, वह हथकड़ी थी। मैंने माथे पर हाथ फेरा। इस ठंडक में भी वहाँ पसीना आ गया था।

उस समय सहसा मुझे एक ख़याल आया—हथकड़ी को उतार कर क्यों न रख दूँ! उसे कुंजी लगी सही, पर मेरी कलाइयां भी तो ख़ासी पतली हैं। एक बार कोशिश कर देखूँ। मैंने कोशिश की। पहली बार ही पुल्क से हथकड़ी मेरे हाथ से निकल गयी। मैंने उसको-गोल मोल करके ज़रा परे रख दिया

और फिर कम्बल को अच्छी तरह ओढ़, नीचे के कम्बल को उस पर लपेट कर, हैट को सिर के नीचे रख कर लेट गया।

दिल अभी तक धड़क रहा था। इस सील में साँप वग़ैरह का होना कोई बड़ी बात न थी। सुन रखा था कि पहाड़ के साँप बड़े विषैले होते हैं। परसों मेरे पास से गज़-भर लम्बा, हरे रंग का एक साँप गुज़र गया था। मैं एक पौधे से फूल तोड़ रहा था कि मेरी उँगली से केवल एक इंच के फ़ासले पर वह सरसराता हुआ गुज़र गया। उसका ध्यान आते ही एक बार फिर रोमांच हो आया। सामने अँधेरे में साँप और बिच्छू नाचते दिखायी दिये। मैंने आँखों को मला और हैट को दूसरी ओर करके, करवट ले कर फिर आँखें बन्द करके चुपचाप लेट गया। उस समय दाहिनी ओर से एक लम्बा, अँगूठे जितना मोटा साँप मेरी ओर पल-पल बढ़ने लगा। मैं काँप उठा। हिलने का प्रयास किया, पर हिल न सका। चीखने की कोशिश की, पर गले से आवाज़ तक न निकली। साँप मेरे पास पहुँच गया। मेरा गला सूख गया। रेंगता-रेंगता वह मेरी छाती पर चढ़ने लगा। मैंने लाख चेष्टा की, पर हिल न सका—जैसे मुझे काठ मार गया हो, अधरंग हो गया हो, इस कोठरी की सर्दी ने जैसे मेरे शरीर को सुन्न कर दिया हो! उस समय बड़े ज़ोर से खड़खड़ हुई। मेरे तन में भी शक्ति का संचार हो आया। मैंने झट से उसे सिर से पकड़ कर पूरे ज़ोर से अँगूठे के नीचे दबा लिया। साँप मुक्त होने को दुम फटकारने लगा कि तभी आँख खुल गयी। देखा तो हथकड़ी मेरे हाथ में थी। मेरे पहलू बदलने के साथ ही मेरी छाती तक आ गयी थी।....मैंने हँसना चाहा, लेकिन मुझपर कुछ ऐसा आतंक छाया कि हँसना तो दूर रहा, मुस्करा भी न सका। बाहर शायद वर्षा हो रही थी, अथवा तूफ़ानी हवा के कारण छप्पर खड़खड़ा रहे थे। पेड़ों

ाँय-साँय इस शोर से मिलकर उस भूगृह में एक विचित्र-सी
ूंज पैदा कर रही थी।

मैं उठा। हथकड़ी को फिर परे रख दिया। अब के कुछ
ज़्यादा दूर....और विचार-धारा बदलने के लिए गुनगुनाने
लगा। धीरे-धीरे इस गुनगुनाहट ने गीत का रूप ले लिया।

कौन ओ वँडावे मेरी पीर, तेरे बिना
ना पल्ले पैसा, ना साहूकारा रामा
क्या करिए तदबीर
तेरे बिना

भाई बन्द, कुटुम्ब वथेरा रामा
न कोई तन का वीर
तेरे बिना

कौन ओ वँडावे मेरी पीर, तेरे बिना[१]

न जाने कितनी देर तक गुनगुनाता रहा। बार-बार यही
बन्द

कौन ओ वँडावे रामा, कौन ओ वँडावे रामा
कौन ओ वँडावे मेरी पीर।

न जाने उस समय मुझमें इतनी आस्तिकता, इतनी श्रद्धा
इतना प्रेम, इतना अनुराग कहाँ से आ गया।

उस समय मैंने अपने आपको संकटों घिरे हुए भ
कबीर ही की भाँति परमात्मा से विनती करते हुए पाया
उसी श्रद्धा से, उसी उपासना से, उसी विनीत भाव से।

१. ऐ मेरे भगवान! तेरे बिना मेरा दर्द कौन बँटायेगा। मेरे
में तो नाम को भी पैसा नहीं है, मैं साहूकारा भी तो नहीं क
फिर क्या तदबीर करूँ?
हे राम! मेरे नातेदार तो बहुत हैं, पर कोई सगा नहीं
बिना कौन मेरा दुख बँटा सकता है।

ऊपर छत पर सर्र-सर्र की आवाज़ आयी। मैं कान लगा कर सुनने लगा। समझ गया कि मेरे लिए जो फल लालाजी ने भेजे थे, वे सब ऊपर ही रख लिये गये हैं और अब उन्हें कागज़ के लिफाफ़ों से निकाल कर बाँटा जा रहा है। मुझे केवल एक आम, एक केला और कुछ जर्दालू और बिस्कुटों का आधा डिब्बा मिला था। दुख और क्रोध के कारण मैं इनमें से किसी को छू न सका था और यद्यपि भूख तो अब भी नहीं थी, लेकिन यह सोच कर कि शायद डरावने सपने खाली पेट ही आ रहे हैं और शायद नींद भी इसीलिए नहीं आती, मैं फल खाने लगा। केला छीला और खा गया। आम कलमी था, चाकू से तराश कर खाने की आदत थी, लेकिन गँवारों की तरह छिलका उतार कर खाने लगा। जर्दालू केवल एक-दो खाये। मुझे वहम था कि इनसे मुझे गर्मी हो जाती है। बिस्कुट यद्यपि बढ़िया थे, पर जी ही न था। इतनी बेबसी और हटले पामर्ज़ के बिस्कुट! मैंने डिब्बे को परे फेंक दिया और फिर सोने की कोशिश की। अंग-अंग दर्द कर रहा था। सारा दिन चलते रहने के कारण टाँगें यद्यपि थकी हुई थीं, पर आँखों में नींद का नाम तक न था।

कई बार दिन की किसी घटना के कारण भावुकतावश रात को नींद न आती थी तो मैं अपनी दृष्टि को मस्तक में लगाने का प्रयास किया करता था। एकाग्रता हो जाने के कारण मुझे नींद आ जाती थी। यहाँ भी मैंने ऐसा ही किया, लेकिन मन को एकाग्रता न मिली। मस्तक में बीसियों चित्र एक के बाद एक आने लगे। लाख चाहा कि मन एक ओर लग जाये, परन्तु एक तरफ़ सर्दी शरीर में चुभी जा रही थी, दूसरी तरफ पिस्सुओं ने तन को काट कर रख दिया था, फिर साँप और [illegible] का भय, शाम की दुर्घटना का रंज, बीसियों विचार,

रहे थे। मन एकाग्र होता तो कैसे ?

मैंने आँखों के पपोटों को धीरे-धीरे मला, शायद भारी हो जायँ, नींद आ जाय, पर कहाँ ? घर पर ऐसे में सिर में तेल डलवाने की आदत पड़ गयी थी। यहाँ पत्नी कहाँ थी कि उसे जगा कर कहता, 'ज़रा सिर में दर्द है, नींद नहीं आती।' और वह उठ कर तेल लगा देती। वह तो जालन्धर में हमारे तीन मंज़िले मकान की छत के ऊपर ठण्डी हवा में सो रही होगी। मेरे सामने अन्धेरे की चादर पर मेरी पत्नी का चित्र आ गया।—मैं जैसे बीमार हूँ, मरणासन्न हूँ और वह मेरे पास आ बैठी है। मैं उसे सान्त्वना दे रहा हूँ....तभी वह लड़की मेरी चारपाई के पास आ कर खड़ी हो जाती है, जिसे मैं,पढ़ाता हूँ। वह शायद मुझे देखने आयी है। उसकी आँखों में करुणा-भरा आश्चर्य है। पूछती है—'मास्टर जी, यह क्या हो गया आपको ?' मैं कुछ अजीब से बेपरवाह, लेकिन करुणापूर्ण लहजे में कहता हूँ :

ज़िन्दगी क्या है अनासर का ज़ुहूरे तरतीब,
मौत क्या है इन्हीं अजज़ा का परेशाँ होना।

वह कुछ नहीं समझती। मुटर-मुटर मुझे तकती रह जाती है। मैं करवट बदलता हूँ। पत्नी उस ओर बैठी दिखायी देती है। मैं उसे समझाता हूँ—'ज़िन्दगी और मौत एक ही चीज़ के दो पहलू हैं। कुछ तत्व इकट्ठे हो गये, ज़िन्दगी नाम पड़ गया, बिखर गये, मौत हो गयी। फिर बीमार रह कर एक-एक इंच मरने के बदले एक ही बार समाप्त हो जाना कितना अच्छा है। ज्वाला की क्षणिक लपक लालटेन की लम्बी टिम-टिम से हज़ार दर्जे अच्छी है।'

वह अब भी कुछ नहीं समझती, केवल रो देती है।

तभी कोई पिस्सू ज़ोर से मेरी दायीं ओर काट देता है।

आँखें खुल जाती हैं। काटे को तनिक-सा मल कर मैं फिर आँखें बन्द कर लेता हूँ। इन दर्द-भरे सपनों में कुछ अजीब मजा आता है।....मैं फिर उसमें खो जाता हूँ....। इस वार कोई साफ़ चित्र नहीं, एक हल्की-सी छाया सामने आती है। धीरे-धीरे यह छाया प्रकट रूप धर लेती है। मैं पहचान जाता हूँ—कुन्ती—वही—हँसती, मुस्कराती चंचल-चपल तन्वी! वह मुझे कुछ नहीं कहती—केवल मेरे सामने आ कर खड़ी हो जाती है। मैं कहता हूँ, 'कुन्ती!' वह मुस्करा देती है। मेरे बालों पर हाथ फेरती है। मैं कहता हूँ, 'कुन्ती, तुम आयी भी हो तो कब जब मेरे हाथ शिथिल हो गये हैं, मेरा शरीर फूल गया है, जब मैं मौत की घड़ियाँ गिन रहा हूँ।' वह फिर भी कुछ नहीं कहती, मेरे सिरहाने बैठ जाती है। मैं फिर कहता हूँ, 'इसे एक बीमार की बकवास न समझना। सच जानना, मैंने यदि किसी से प्रेम किया है तो वह तुम हो—केवल तुम! चाहे मुझे आज तक तुमसे यह कहने का अवसर ही नहीं मिला। तुम्हारे प्यार को मैंने मन के तारीक गोशों में छिपाये रखा है, लेकिन कुन्ती, तुम्हें मालूम तो है न, है न मालूम तुम्हें! तुम सबसे पहली और आखिरी युवती हो, जिससे मैंने प्यार किया है—हृदय की समस्त शक्तियों से प्यार किया है। चाहे आज तक हम में बात नहीं हुई, चाहे आज तक हम ने किसी से कुछ नहीं कहा।.... वह—ओह! वह उस समय कहाँ थी। और फिर पत्नी और प्रेमिका—दोनों का स्थान अलग है। एक के साथ मनुष्य प्रेम के तार में बँधा है, दूसरे के साथ कर्तव्य के। तुम समझती हो न। फिर क्या तुमने मुझे प्रोत्साहन नहीं दिया? उन मुस्कराहटों से, उन कटाक्षों से।'....वह हँस पड़ी। '....हाँ हाँ तुम हो ने तो....'

'चुप करो, सो रहो, तुम्हें इस समय नींद की जरूरत है'—उसने मेरे मुंह पर हाथ रख दिया। मेरे सारे शरीर में सर

दौड़ गयी। मैंने उसके हाथ को चूम लिया।—वह ग़ायब हो गयी। मेरी आँखें खुल गयीं। दिल की गहराई से एक लम्बी साँस निकल गयी। कुछ भी नहीं था—न प्रेमिका, न प्रेमी। केवल तहख़ाना था और बेचारा बन्दी !

०

प्यार भी कैसा जादू है ! इसके सहारे मनुष्य काँटों पर भी आराम से रह सकता है। उन चन्द बीते हुए दिनों की स्मृति ने इस बेबसी की अवस्था में भी मुझे कुछ अजीब-सी शांति बख़्श दी। मेरे हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। वे दिन भी क्या दिन थे जब हवा के पंखों पर उड़े फिरते थे, न किसी का दुख था, न किसी का ग़म ! प्रेम करते थे और प्रसन्न थे कि हम प्रेम करते हैं। कौन कहता है प्रेमियों की रात काटे नहीं कटती। जिसने ज़रा भी प्रेम किया है, उसे एक रात क्या, दसियों रातें बिता देना आसान है। कल्पना उसकी सहायक है, फिर क्या डर है।....पर यहाँ तो प्रेमी की रात न थी, बन्दी की रात थी।....

०

मैंने फिर आँखें बन्द कर लीं, लेकिन फिर वह सुख-सपना नहीं लौटा। सिर फटा जा रहा था, आँखें दुख रही थीं, शरीर पर पिस्सुओं के काटने से घाव पड़ गये थे और अँधेरे में दम घुटा जाता था, इस पर भविष्य की चिन्ता सिर पर सवार थी। यदि मैं न रिहा किया गया, तो क्या होगा ?—इस हवालात ही में (जबकि मैं अपराधी नहीं, केवल अभियुक्त हूँ) मैं तीन-चार दिन से ज़्यादा ज़िन्दा नहीं रह सकता। तब रियासती बन्दीखाने में कैसे बसर होगी। मैं बेचैन हो उठा। आँखें भर आयीं। तभी ज़रा परे दीवार के साथ पानी के गिरने की आवाज़ आयी, ग्लानि से मेरा जी ऊपर को आने लगा। इन

बर्बर सिपाहियों के यहाँ शील कहाँ ? बाहर शीत है, [illegible] हुई होगी, अन्दर कोने में निबट लिये होंगे। मुझे अपनी [illegible] पर रोना आ गया। किसी ने ऐसा घृणित काम न [illegible] हो, केवल पानी ही गिराया हो, पर मेरी बेबसी और [illegible] तो सिद्ध थी।

मैंने एक बार फिर आँखों को मला, न जाने [illegible] होगा ? यदि नींद आ जाती, यदि ये सब [illegible] क्लेश—सब कुछ क्षणों के लिए सो जाते, फिर दिन [illegible] और दिन काटना इतना कठिन नहीं, इस एकान्त [illegible] केशोर को सुन कर, दूसरों की बातचीत की [illegible] यह सोच कर कि यह 'दिन' है।

सिर में न जाने इतना दर्द कहाँ से आ [illegible] जैसे कोई हथौड़े मार रहा है। अंग-अंग [illegible] एकदम शिथिल हो रही थी। पिस्सुओं ने [illegible] रख दिया था। एकान्त था, अँधेरा था और [illegible] आँखें कुछ देर के लिए बन्द हो जातीं, [illegible] जाता, लेकिन नींद कहाँ थी।

मैंने आँखों को मस्तक में जमाया। [illegible] की आवाज आ रही थी, उसमें ध्यान [illegible] पर व्यर्थ। नींद तो क्या आती, [illegible] सोचना शुरू किया। उन दिनों की [illegible] साथियों से [illegible] करते थे—

थी। गरदन में बल-सा पड़ गया था, इसलिए उठ कर बैठ गया—खम्भे का सहारा ले कर।

०

न जाने, क्या बजा होगा ? शायद तीन बजे होंगे। छै बजे लोग जाग जाते होंगे। तीन घण्टे हैं, कैसे बीतेंगे ? सहसा मन में एक विचार उठा। स्कूल में और प्रायः कॉलेज में भी, जब किसी टीचर अथवा प्रोफ़ेसर के सूखे लेक्चर से जी ऊब जाता था और घंटी बजने में न आती थी तो उस समय एक-दो गिनना शुरू कर देते थे। दो-तीन सौ गिनते-गिनते घंटी बीत जाती थी। तो क्या इसी प्रकार ये तीन घंटे न बीत जायेंगे। मैंने गिनना शुरू किया, एक सौ, दो सौ, तीन सौ, यहाँ तक कि छत्तीस सौ गिन गया। एक घंटा बीत गया। मेरा उत्साह बढ़ा। फिर पागल की तरह गिनने लगा और एक घंटे तक गिनता रहा। फिर वही ३६००। मैंने ऊपर दरवाज़े की ओर देखा। प्रकाश की ज़रा-सी किरण भी न थी। मैं अपनी भूल पर हंसा। ऊपर जाने का दरवाज़ा बन्द था और उसके बन्द होने पर तो इस भूगृह में दिन को भी रात बनी रहती थी, फिर अब तो रात ही थी। कुछ क्षणों के लिए मैं हतोत्साह हो गया। उस समय ऊपर किसी ने करवट ली। मुझे निश्चय हो गया कि दिन निकलने वाला है, फिर गिनने लगा। छत्तीस सौ। मैंने कान लगाये। शायद कोई जगा हो, पर नहीं, सब ओर निस्तब्धता थी, घोर सन्नाटा था—मेरे हृदय से एक लम्बी साँस निकल गयी और हैट को सिरहाने रख कर मैं फिर लेट गया।

अब हिसाब लगाता हूँ तो मालूम होता है कि उस समय मैं एक, दो, तीन करके दस हज़ार आठ सौ गिन गया। सोचता हूँ तो हैरान होता हूँ। जब पागलों की तरह महारनी रटने के बाद भी मुझे लगा कि अभी सवेरा दूर है तो मेरी निराशा

चरम-बिन्दु को पहुँच गयी। मुझे लगा जैसे अब प्रभात न होगा हताश-सा पड़ा इस अँधेरे तहखाने में घुट-घुट कर मर जाऊँगा। रोशनी के लिए, हवा के लिए, किसी से दो बातें करने को तरसता हुआ अपने मित्रों तथा बन्धु-बांधवों को अन्तिम नमस्कार कहने की लालसा मन में लिये हुए ही इस ब्लैक होल में दम तोड़ दूँगा। मेरा सर चकरा उठा और मैंने क्रोध और आवेग के कारण उसे ज़ोर-ज़ोर से पीट लिया।

कुछ देर चुपचाप लेटा रहा। मन तनिक शान्त हुआ तो मैं अपनी स्थिति पर विचार करने लगा। ज्यों-ज्यों सोचता गया, मन को धैर्य मिलता गया। आखिर सुख-दुख तो जीवन के साथी हैं। जीवन-संग्राम में कभी एक की जीत है तो कभी दूसरे की। ज़िन्दगी में यदि सुख ही सुख हो तो शायद मनुष्य का दिल उससे ऊब जाय। सदैव मीठा किससे खाया जाता है। ज़िन्दगी के दस्तरखान पर दोनों का मज़ा चखना ज़रूरी है। शेक्सपियर ने कहा है—'Sweet are the uses of adversity'—याने विपत्ति के फल बड़े मीठे हैं। नमक कडवा अवश्य है, लेकिन इसकी कद्र वही जानता है जिसे वर्षों से मीठा ही खाने को दिया जाता हो....फिर जीवन एक विशाल प्रयोगशाला है। इसके पग-पग पर नये-नये अनुभव होते हैं। यह भी इनमें से एक सही।....पत्रकार के लिए किसी समाचार के सम्बन्ध में अथवा किसी राष्ट्रीय अभियोग मे जेल-यात्रा साधारण बात है, पर इस अभियोग में हवालात की सैर करने का तजरबा कि[illegible] बिरले पत्रकार को ही नसीब हुआ होगा।—फिर स[illegible] मीलों दूर, इस रियासती काल-कोठरी मे रात गुज़ा[illegible] अनुभव! यहाँ तो सैर के लिए आने वाले टूरिस्ट [illegible] आना पसन्द न करें। इसके अँधेरे को देखकर [illegible] भी दहल जाय। मैं सी-पी के मेले में

सामग्री इकट्ठी करने आया हूँ, यदि यह घटना न होती तो इन रियासतों के निवासियों की स्थिति का यह ज्ञान कैसे प्राप्त होता? यह सोचते-सोचते क्षण-भर को यही इच्छा हुई कि मुझे इस अभियोग का दण्ड मिल जाय। मैं देख सकूं कि जहाँ की हवालात नरक से कहीं भयानक है, वहाँ की जेल कैसी है, चाहे इससे मेरा प्रोग्राम नष्ट हो जाय, चाहे मेरी कल्पनाओं के समस्त गढ़ ढह जायँ ...

०

यह सब सोचते-सोचते न जाने कब मेरी आँखें बन्द हो गयीं। परेशानी में नींद भी गृहिणी की-सी हो जाती है। जितना ही आप उसे मनाते हैं, यह रूठती है, लेकिन ज्योंही आप उससे आँखें फेरते हैं, वह मन जाती है। कुछ ही क्षण बाद मैं गहरी नींद सो गया।....

सोते-सोते मैं क्या देखता हूँ कि मैं घने जंगल में खो गया हूँ। घबराया हुआ इधर-उधर भटकता हूँ, पर मार्ग दिखायी नहीं देता। जंगली जन्तुओं के भय से तनिक-सी आहट पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उस समय ज़रा दूर पर शेर की गरज सुनायी देती है, मैं काँप जाता हूँ। पास ही एक घना वृक्ष है, उस पर चढ़ने का प्रयास करता हूँ, पर इतना काँप रहा हूँ कि हाथ-पाँव फिसल-फिसल जाते हैं। शरीर पसीना-पसीना हो रहा है। शेर की दहाड़ समीप ही सुनायी देती है। मैं अन्तिम प्रयत्न करता हूँ। इस बार सफल हो जाता हूँ। शेर नीचे आ कर बैठ जाता है। मेरा हृदय भयभीत है, पर अपनी सफलता पर प्रसन्न हूँ। सिंह धरना दिये बैठा है। मैं एक टहनी तोड़ता हूँ। वह देखते-देखते बन्दूक बन जाती है। मैं सिंह से कहता हूँ, 'तुम चले जाओ, नहीं तो इसी बन्दूक से तुम्हें खत्म कर दूंगा।' शेर उठ कर ज़ोर से गरजता है। बन्दूक मेरे हाथ

से छूट जाती है। वह ज़ोर का ठहाका मार कर हंसता है, कहता है, 'देखो यह सीढ़ी वृक्ष में लगी है। मैं इस पर चढ़ कर तुम्हें खा जाऊँगा।' मैं देखता हूँ कि पेड़ के साथ एक बांस की सीढ़ी लगी हुई है और शेर उस पर चढ़ना चाहता है। मैं फिर कांप जाता हूँ, पर तुरन्त ही सीढ़ी को ऊपर खींच लेता हूँ। दूसरे क्षण अपनी सफलता पर बड़े ज़ोरों से हंसता हूँ।....

उस समय मेरे कानों में आवाज़ आती है—'अरे भई उठो, अरे भई उठो।' और फिर कोई धीरे से कहता है, 'बेचारा सो गया है।'

मेरी आँखें खुल जाती हैं। देखता हूँ—सुबह हो गयी है और भूगृह का दरवाज़ा खुला हुआ है और उस छोटे-से दरवाज़े से रोशनी जैसे अंधेरे को धकियाती हुई अन्दर आ रही है। न वह जंगल है, न सिंह, न वृक्ष !

"क्यों भई, सो रहे हो या जागते हो?" मुझे जीवित देख कर एक सिपाही ने आवाज़ लगायी।

"जाग पड़ा हूँ।" मैं ऐसे बोला कि मुझे अपनी आवाज़ की क्षीणता पर स्वयं आश्चर्य हुआ।

# बारह

"टिक्का साहब का हुक्म आया है। आपको अभी दरबार में पेश किया जायगा।"

बाहर प्रकाश में लाये जाने पर, चौंधियायी हुई आँखों को मलते हुए मैंने अपने सम्बोधन-कर्त्ता को देखा और पहचान गया। यह बड़े दारोग़ा रामप्रताप थे। उनका नाम मुझे पिछली रात सिपाहियों की बात-चीत के दौरान मालूम हुआ था।

मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही। कम-से-कम कल के दारोग़ा और आज के दारोग़ा में ज़मीन-आसमान का अंतर था। बड़ी-बड़ी मूँछें वही थीं, पर उन से रोब नहीं टपकता था। आँखें वही थीं, पर लाल डोरे नहीं थे। शरीर वही था, पर उनकी अकड़ ग़ायब थी। इसका कारण मुझे उस समय तो नहीं, पर बाद को मालूम हुआ।

अब जैसे पहली बार मैंने उन्हें अच्छी तरह देखा। उनका शरीर एक अधेड़ उम्र के बूढ़े का शरीर था और उस पर उन्होंने बटनों के बिना एक कमीज़ पहन रखी थी, जिसके खुले गिरेबान से छाती की हड्डियाँ साफ़ दिखायी देती थीं। कमर में एक ढीला-सा पायजामा था, जिसमें टाँगों का पतलापन साफ़ प्रकट था। कुछ अजीब-सी दीनता उनके चेहरे पर बिखरी थी। तभी मुझे मालूम हुआ कि दारोग़ा रामप्रताप जाति से ब्राह्मण हैं। कल के रामप्रताप दारू के घोड़े पर चढ़े हुए थे। अपनी दीनावस्था, अपनी निर्धनता, अपने घर की शोचनीय स्थिति को भूल कर हुकूमत के मद में मत्त थे, आज के रामप्रताप दीनता के गढ़े में गिरे हुए थे। भूठ उतर चुका था

और सत्य सामने था—कितना दीन, कितना विवश !

मेरे सिर को फिर ज़रा-सा चक्कर आया, इसलिए मैं फ़र्श पर बैठ गया ।

"तिवारी साहब दो बार कह चुके हैं कि मेरे जाने से पहले तुम्हारे मामले का फ़ैसला कर देना चाहते हैं, तुम्हें शौचादि के लिए जाना हो तो जाओ ।" दारोग़ा ने सहज भाव से कहा । मैं चल पड़ा—एक हाथ में हथकड़ी पहने उसी सिपाही के साथ, जिससे मेरा झगड़ा हुआ था । मुझे याद आया, जब हमारी पाठशाला के सामने पुलिसलाइन में सिपाही इसी प्रकार कैदियों को हथकड़ी पहना कर शौचादि के लिए ले जाया करते थे, तो हम सब छोटे-छोटे बच्चे कौतूहल और करुणाभरी निगाहों से उन्हें देखते थे । हमारे नन्हे-नन्हे दिलों में बड़ी हमदर्दी उमगती थी, लेकिन सिपाहियों का तो यह प्रतिदिन का काम था और जिस प्रकार कसाई नित्यप्रति निर्दोष जानवरों का गला काटने से नहीं हिचकिचाता, इसी प्रकार इन सिपाहियों के दिलों में भी कैदियों की ऐसी लाचार, बेबस और असहाय अवस्था पर ज़रा भी हमदर्दी न उमगती । वे अपने काम को परम निरपेक्ष भाव से किये जाते ।

शौचादि से निवृत्त हो कर मैं फिर वापस आया । मुझे दफ़्तर के कमरे ही में बैठाया गया । तब ऐसा लगता है जैसे पहली बार पण्डित रामप्रताप की दृष्टि मेरी हथकड़ी की ओर गयी । "इस हथकड़ी की क्या ज़रूरत है !" उन्होंने सामने सिपाही की ओर देख कर कहा, "इसे उतारने में क्या हर्ज है !"

"हाँ, यह उतार देनी चाहिए ।"

मैंने समझा जैसे मैं स्वतन्त्र हो गया हूं। यह भूगृह भी अजीव चीज़ है ! जब इसके अन्दर था तो ऐसा निराश हो गया था कि बाहर आने को जी न चाहता था और जब बाहर आ गया तो उसके अन्दर जाने को इच्छा न होती। विचार मात्र से मन पर आतंक छा जाता था....और यह हथकड़ी....आप सर्वथा निर्दोष हैं, आपने कोई अपराध नहीं किया, आप अभी-अभी छोड़ दिये जायेंगे, पर यदि आप हथकड़ी पहने हुए हैं तो कुछ व्यक्तियों के अतिरिक्त, जिन्हें आपकी निर्दोषिता का पूरा विश्वास हो, बाकी सब आपको पक्का बदमाश, चोर, आवारागर्द, गुण्डा, लड़ाका कुछ भी समझ सकते हैं। यदि आप युवक हैं, आपके बाल घुँघराले हैं अथवा बेपरवाही से बिखरे हुए हैं या आपके ऐनक लगी हुई है या आप पतले-छरहरे हैं तो जन साधारण सहज ही आप को एक उद्दंड और खतरनाक क्रान्तिकारी समझ लेंगे।

हथकड़ी उतरते ही मैंने सुख की साँस ली। अब चाहे मैं अपराधी भी हूँ, चाहे अभी-अभी हत्या करके लौटा हूं तब भी जन साधारण में से कोई मुझे अपराधी नहीं समझ सकता। चाहे मैं सिपाहियों के साथ भी जा रहा होऊँ, तो भी कोई नहीं कहेगा कि मुझ पर इस प्रकार का अभियोग लगाया गया है। साधारणत: लोग मेरी पोशाक को देख कर यही समझेंगे कि टिक्का साहब का विशेष अतिथि हूँ अथवा किसी अँग्रेज़ अफ़सर के साथ सेक्रेटरी के रूप में आया हुआ हूं। रात की परेशानी के कारण मेरे चेहरे पर एक ही रात में दाढ़ी बढ़ आने से मेरे परेशान मुख और सिर के बिखरे हुए बालों को वे मेरा काम में अधिक व्यस्त होना ही समझेंगे।

टिक्का साहब का बुलावा दो बार आ चुका था। केवल छोटे दारोग़ा की प्रतीक्षा थी। उनके आने पर हम दरबार को

चले । उस समय सब की वर्दियां उतरी हुई थीं और वे पहाड़ी सिपाही अपने जीर्ण-शीर्ण कपड़ों में बड़े ही दयनीय लग रहे थे ।

हवालात से कुछ दूर चल कर सब रुक गये । मैंने आश्चर्य के इधर-उधर देखा । मैं कभी किसी रियासत में नहीं गया । किताबों में दरबारों के अजीब-गरीब वृत्तांत पढे थे । इसलिए मैं किसी बड़े न सही, छोटे दरबार की कल्पना कर रहा था । मैं यह जानता था कि यहां कोटी के राणा कुछ दिनों के लिए ही आते हैं, इसलिए किसी बड़े दरबार का आयोजन नहीं हो सकता, लेकिन फिर भी इसे, शिमले की इन छोटी-छोटी रियासतों के सम्बन्ध में, मेरी अनभिज्ञता कहिए अथवा मेरी अनुभवहीनता, मुझे इतने पूअर शो की आशा न थी ।

मुझे जहां ला कर खड़ा किया गया, वह जगह एक ओर से खुली थी और उसके तीन ओर कच्ची बैरिकें-सी बनी हुई थी । मुझे अपने स्कूल के होस्टल की याद हो आयी, जो जालन्धर में इसी प्रकार का बना हुआ था और जिसके विशाल आंगन में हम स्कूल के दिनों में खेला करते थे । हम बायीं ओर की कोठरियों में सबसे पहली कोठरी के सामने खड़े थे । उसके बाहर बरामदे में एक लोहे की कुर्सी पर टिक्का साहब केवल सलवार-कमीज और पैरों में नियागरा पहने बैठे थे । उनकी आंखें अभी तक खुमार से भरी हुई थी और उनमें एक अलसायी हुई-सी थकन थी । ठोड़ी पर एक बड़ा-सा घाव का निशान था, लम्बी-लम्बी मूंछें कानों की ओर बढ रही थीं और चेहरे के मुकाबले में बहुत बड़ी थीं । चेहरे से दर्प टपका पड़ता था । मैंने उस कमरे में नजर दौड़ायी, जिसके बाहर वे कुर्सी डाले बैठे थे । जहां मैं खड़ा था, वहां से केवल एक पलंग, रेशमी रजाई और उसके पास पड़े हुए एक टेबल का कुछ भाग दिखायी

दे रहा था।

मैं दुर्बलता के कारण खड़ा न रह सकता था। इसलिए मैंने टिक्का साहब से पूछा, "क्या मैं बैठ सकता हूँ।"

लाल-लाल आँखों के उठने और झुकने से मुझे बैठने की आज्ञा मिल गयी। मैं बैठ गया। मुझसे कुछ अंतर पर बरामदे के स्तम्भ के सहारे रीडर महाशय बैठे थे। वही गोरे-से युवक जो कल लाल ब्लेज़र और फ़लालेन की पतलून पहने हुए थे। उस समय केवल एक धोती और कमीज़ पहने हाथ में काग़ज़ लिये बैठे थे। नहा चुके थे, पर उन्होंने बाल नहीं बनाये थे। मैजिस्ट्रेसी का काम टिक्का साहब स्वयं करते थे। वे क्यार कोटी के चीफ़ मैजिस्ट्रेट थे। उन्हीं को मेरे मामले का निर्णय करना था।

सबसे पहले उस सिपाही का बयान हुआ, जिससे मेरा झगड़ा हुआ था। उसने कुछ ऐसा बयान दिया—

"मैं अपनी ड्यूटी पर खड़ा था, जब यह दूसरे कुछ लोगों के साथ स्त्रियों के अखाड़े के पास खड़ा 'छेड़खानी' करने लगा....।"

मुझे प्रश्न करने की पूरी स्वतन्त्रता दे दी गयी थी, इसलिए मैं पूछ बैठा—

"क्यों जी, मैं किस प्रकार छेड़खानी कर रहा था ?"

वह कुछ उत्तर न दे सका। मैंने फिर कहा, "वे पहाड़ी स्त्रियाँ थीं और मैं पंजाबी। उनकी बोली भी नहीं जानता, फिर वे बाड़ के अन्दर थीं और मैं काफ़ी दूर बाहर। उनसे मेरी पहली जान-पहचान तो थी नहीं, मैं पहाड़ियों के हाव-भाव भी नहीं जानता, फिर मैंने कैसे छेड़खानी की ?"

वह इसका भी कुछ उत्तर न दे सका। अपने पास खड़े हुए एक आदमी की ओर देख कर बोला, "इससे पूछ लीजिए, यह

छेड़खानी करता था या नहीं ?" और वो महाशय, मुझे अच्छी तरह याद है, उस समय बहुत ऊपर काफ़ी फ़ासले पर बैठे वरड़ियों का गाना सुन रहे थे।

खैर, उसने अपना बयान फिर जारी किया—"मैंने उन लोगों से हटने को कहा। और तो हट गये, पर इसने मेरे मुँह पर चाँटा दे मारा।"

यहाँ पर मैं फिर चुप न रह सका। मैंने उससे पूछा—

"क्यों भई' चाँटा किस हाथ से मारा था ?"

"इससे।" उसने दायाँ हाथ दिखा कर कहा।

"क्या मेरे हाथ में और कुछ नहीं था ?"

"नहीं।"

मैंने रीडर से कहा, "नोट कर लीजिए !"

रीडर ने मेरी बात लिख ली तो मैं बोला, "मेरे हाथ में छड़ी थी। वह फ़रद बरामदगी में शायद मौजूद है। या तो यह हो सकता है कि मैंने इसके छड़ी रसीद की हो या बायें हाथ से चाँटे रसीद किये हों, परन्तु बायें हाथ से मैं कैसे चाँटे रसीद कर सकता ? उसमें मिठाई का दोना था।"

मेरी आपत्ति लिख ली गयी।

बयान जारी रखते हुए सिपाही ने कहा, "उस समय मैंने सीटी दी और इसे गिरफ़्तार कर लिया।"

दो आदमियों ने इस बयान का समर्थन किया। इनमें से एक रियासत का खजांची था और दूसरा क्लर्क। खज़ांची साहब वही थे, जो उस समय वरड़ियों का गाना सुनने में व्यस्त थे और जिनकी ओर सिपाही ने अपने बयान का समर्थन कराने के लिए इशारा किया था।

इन सबके बयान हो चुकने पर मेरा बयान हुआ। मुझे दारोग़ा रामप्रताप ने समझा दिया था कि यदि बचना चाहते

हो तो और चाहे जो बयान देना, पर यह अवश्य कह देना कि ग़लती हो गयी है, क्षमा कर दें। मैंने जो सच्ची बात थी, बता दी और जब मैंने कहा कि उत्सुकता के कारण मैंने पूछा 'आपके राणा साहब कहाँ तक पढ़े हुए हैं?'—तो टिक्का साहब की भृकुटी तन गयी। मेरा दिल धक् से हुआ। 'अब बचना मुश्किल है।' मैंने सोचा। और 'हुज़ूर ग़लती हुई माफ़ करें' कहना भूल गया। लेकिन नहीं, बयान समाप्त होने पर टिक्का साहब ने धीरे से कुछ कहा और मुझे सिर्फ़ इतना मालूम हुआ कि मैं छोड़ दिया गया हूं।

०

उसी समय एक आदमी को पेश किया गया। पता चला कि इसने रात को एक हलवाई की कड़ाही चुरा ली थी।

टिक्का साहब ने उससे चोरी का कारण पूछा।

गिड़गिड़ाते हुए उसने कहा, 'हुज़ूर ग़लती हुई माफ़ करें।'

उसने जिस चालाकी से कड़ाही चुरायी थी, उसे जानते हुए और उसकी विनय का यह अभिनय देख कर सब हँस पड़े, पर मुझे हँसी नहीं आयी। शायद एक बार हवालात में जा कर हम बन्दियों को उनके दृष्टिकोण से देखने लगते हैं।

इस्तग़ासे की कहानी यह थी कि उसने आधी रात के सन्नाटे में, जब सब लोग सो रहे थे, हलवाई की कड़ाही बड़ी सफ़ाई से चुरायी और मेले से तनिक फ़ासले पर जंगल में छिपा दी। एक आदमी ने उसे उधर कुछ छिपाते हुए देखा था। हलवाई ने प्रातःकाल ही शोर मचा दिया। वह महाशय पकड़े गये। उन्होंने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया और अब इधर लाये गये। हलवाई भी साथ लाया गया था।

अभियुक्त को चोरी से इन्कार नहीं था। पर वह ग़रीब फ़ाकाकश आदमी था, मेले में काम देखने आया था। काम

मिला नहीं और अपने खाने का प्रबन्ध करने के लिए उसके पास कौड़ी भी न थी। उसने हलवाई से भीख माँगी। उसने गालियाँ दीं, प्रतिशोध और क्रोध के आवेश में उसने हलवाई से बदला लेने की ठानी और जब रात हो गयी तो उसने उसकी कड़ाही चुरा ली। उसने अभी तक कल से कुछ नहीं खाया था और उसके पिचके हुए गाल इस बात के साक्षी थे। दोषी होने पर भी मैंने उसे निर्दोष ही समझा और जब टिक्का साहब ने आदेश दिया, 'इसे हवालात में बन्द रखो। मेले के बाद इसका फैसला होगा'—तो मेरा दिल भर आया।

०

दरबार बरखास्त हो गया। टिक्का साहब उठ कर अपनी कोठरी में चले गये और वे लोग उसे हवालात को ले चले।

मेरे हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया—तो एक रात का नरक आज इसे भोगना होगा। एक रात क्या, शायद कई रातों का नरक।

और एक ठंडी सिहरन मेरी रीढ़ की हड्डी तक उतरती गयी।

# तेरह

इसके बाद कहानी अत्यन्त संक्षिप्त है। मैं रिहा हो गया। मुझे मेरी चीज़ें वापस दे दी गयीं। सब कुछ—घड़ी, नकदी, नोट बुक, और बिस्कुटों का आधा पैकेट भी, जो वहीं रह गया था। मैंने एक-एक बिस्कुट सब को बाँट दिया। दारोग़ा रामप्रताप ने अत्यन्त विनय से क्षमा माँगी और अपनी विवशता का रोना रोया। उनके एक लड़का था, संस्कृत पढ़ाना चाहते थे। उसे कुमारसम्भव के कुछ श्लोक और व्याकरण की कुछ गरदानें कण्ठस्थ थीं। बहुत बारीक स्वर में उसने मुझे श्लोक गा कर सुनाये और सबसे विदा ले कर मैं ऊपर को चल दिया।

हवालात से कुछ ही दूर आया हूँगा कि किसी का बारीक-सा स्वर सुनायी दिया। मैंने ऊपर को दृष्टि की। बरामदे में टिक्का साहब का लड़का खड़ा था—वही जो मुझको हवालात में देखने आया था।

"क्यों रिहा हो गया ?" उसने सरलता से मुस्कराते हुए कहा।

"हाँ।"

"फिर इस तरह सिपाहियों से न लड़ना।"

मैं हँस कर चल दिया। ज़रा दूर आने पर प्रोफ़ेसर सिंह मिले जो उधर ही आ रहे थे। बोले—

"सुनाओ भई, रिहा हो गये।"

"हाँ।"

"मैं टिक्का साहब से तुम्हारी सिफ़ारिश करने जा रहा

था।"

"आभारी हूँ।"

प्रोफ़ेसर सिंह शिमले के प्रसिद्ध गायक थे। यहाँ महफ़िल में गाने आये थे। मुझसे भेंट हो गयी, सोचा इन पर ही एहसान का बोझ लादते चलो, बाद में मुझे पता चला कि जब किसी मित्र ने उनसे इस घटना के सम्बन्ध में कहा था तो उन्होंने इस बेरुखी से 'अच्छा' कहा जैसे मेरा उनका छत्तीस का नाता भी न हो।

तभी मेरे कन्धे को किसी ने थाम लिया। मैंने मुड़ कर देखा तो रीडर महाशय हैं। कहने लगे, 'माफ़ करना भाई, हम सब आपकी स्थिति से परेशान थे, पर कुछ कर नहीं सकते थे। छोटे टिक्का के मास्टर साहब और हम सबने आपकी पुर-जोर सिफ़ारिश की थी। पर उस समय किसी ने सुनी नहीं।'

मैंने उनको धन्यवाद दिया। वे मुझे उस शामियाने तक ले आये जिसके नीचे पुराने जमाने की चाँदी की कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं और जहाँ राग-रंग की महफ़िल जमी थी। वहीं कुर्सियों पर हम कुछ देर बैठे। बात-बात में मैंने उनका ध्यान उस ब्लैक होल की तरह के भूगृह की ओर आकर्षित किया, जिसमें मुझे एक रात बसर करनी पड़ी थी। "आपकी हवालात तो नरक से कम नहीं," मैंने कहा, "मैं तो अपराधी के भी ऐसी कोठरी में रहने का हामी नहीं—फिर उस अभियुक्त की तो बात ही न पूछिए, जिसका अपराध अभी तक सिद्ध नहीं हुआ। उसे ऐसी काल-कोठरी में रखना तो सरासर जुल्म है।"

"आप शहर के रहने वाले हैं," वे बोले, "यहाँ प्रायः निडर पहाड़ी लोग, गुण्डे, शराबी और बदमाश रखे जाते हैं, जो ठण्ड होने पर भी कपड़े उतार कर फेंक देते हैं। चकित न हों, आप-को यहाँ रहना नहीं, वरना मैं आपको दिखा देता।"

"फिर भी इस बीसवीं सदी में, जब पश्चिम में जेलों को वन्दियों के सुधारार्थ अधिक-से-अधिक सुखद बनाया जाता है और उनके जीवन को पंक में बिलबिलाने वाले कीड़ों ऐसा न बना कर उन्हें अच्छा नागरिक बनने की शिक्षा दी जाती है, उनके स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है और अब अँग्रेज़ी सरकार ने भी जेलों के सुधार का प्रयास किया है, इस रियासत में ऐसी काल-कोठरी को हवालात बनाया जाना निहायत पिछड़ेपन की बात है।"

"इस रियासत में ही क्या ?" रीडर महाशय बोले, "आप शायद कभी सोलन के मेले नहीं गये, नहीं तो वहाँ की हवालात देख कर चकित रह जाते। ऐसे जर्जर और जीर्ण-शीर्ण घरौंदे से हवालात का काम लिया जाता है, जिसे यदि एक हृष्ट-पुष्ट आदमी ज़ोर से लात मार दे तो भड़भड़ा कर ज़मीन पर आ रहे।"

मैं एक सूखी हँसी हँसा। उनके कथन में चाहे अत्युक्ति हो, पर इससे रियासती हवालातों की यथार्थता का तो पता चलता था। मैंने उठते हुए कहा, "फिर भी रीडर साहब, इन ग़रीबों की तकलीफ़ को महसूस करना चाहिए।"

"उनको इससे क्या?" वे बोले, "उनको एक रात इस नरक में काटनी पड़े तो शायद किसी सुधार की आशा भी हो सके।"

रीडर ने सच ही तो कहा। यदि उन राजाओं और टिक्काओं को इन काल-कोठरियों में एक-दो रातें काटनी पड़तीं तो उन जेलों में काफ़ी सुधार हो सकता था।

मैंने अपने चेहरे पर हाथ फेरा, परेशानी के कारण सूख-सा गया था। होंठों पर पपड़ी जम गयी थी और बाल इतने बढ़ आये थे, जैसे कई दिनों से हजामत न बनवायी हो, ऐनक का फ्रेम टूट गया था। चुनाँचे मैंने रीडर साहब से हाथ मिलाया

और चल पड़ा।

बाज़ार में एक दुकानदार ने आवाज़ दी, "क्यों बाबू जी, रिहा हो गये।"

मैंने सिर उठा कर देखा—वही दुकानदार था, जिसने आते हुए मेरी ऐनक उठा कर पकड़ायी थी।

मैंने कहा, "हाँ भाई।"

"आपको गुस्सा बहुत आ गया था, नहीं तो ऐसे मामलों पर तो कभी इतनी नौबत नहीं आती। जरा मिन्नत-समाजत से काम चल जाता है और यदि बात बढ़ गयी हो तो एक-दो दे-दिला कर मामला रफ़ा-दफ़ा हो जाता है। पर आपने तो स्वयं हथकड़ी लगवा ली।"

"कुछ ऐसा ही गुस्सा आ गया था।" मैंने कहा।

"आ ही जाता है ऐसे मौकों पर।" वह मेरी बात का समर्थन करते हुए बोला, "आपने तो खैर उसे गर्दन ही से पकड़ा था, कहीं हमें वैसी गाली दी होती तो साले का सिर ही तोड़ देते।"

"नतीजा अच्छा नहीं निकलता।"

"चाहे जो हो, ऐसा अपमान सहन नहीं होता।"

"कुछ भी हो, कर्तव्य में तो सब कुछ सहना ही पड़ता है। इकबाल कहते हैं ना :

"[illegible]
[illegible]।"

"चाहे जैसा भी हो आदमी, मुझ से आदमी से गाली तो नहीं खाई जा सकती।"

मैं रास्ते में उसकी बातों पर सोचता रहा। ज़िन्दगी में ऐसे अवसर भी आ जाते हैं, जब दुकानदार तो क्या, आदमी का गुस्सा मौत की भी परवाह नहीं करता।

मेले के स्थान से अभी कुछ ही फरलांग ऊपर चढ़ा हूँगा कि लाला जी शिमले के एक प्रसिद्ध वकील के साथ आते हुए दिखायी दिये।

लाला जी को मुझे देखते ही अपार प्रसन्नता हुई। हाँ, वकील महोदय का चेहरा कुछ उतर-सा गया। तब तो नहीं, पर बाद में मुझे इसका कारण भी मालूम हो गया।

हम तीनों वहीं सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ गये।

वकील साहब ने पूछा, "मेरा टेलीफ़ोन पहुँचा था?"

मैंने कहा, "मुझे तो मालूम नहीं, मुझे आठ बजे के करीब छोड़ दिया गया था।

एक फीकी-सी मुस्कराहट के साथ वकील साहब ने यह बताने का प्रयास किया कि मेरी रिहाई उनके टेलीफ़ोन का ही नतीजा थी।

खैर, लाला जी ने उन्हें तो मेला देखने जाने को कहा और मुझे साथ ले कर घर की ओर चल पड़े।

मार्ग में लाला जी ने मुझे जो कहानी सुनायी, उससे मुझे मालूम हुआ कि वह रात मेरी ही परेशानी का कारण न थी, बल्कि प्रायः सारी मित्र-मण्डली को उस रात नींद हराम करनी पड़ी।

मेरे हवालात ले जाय जाने के बाद तत्काल लाला जी टिक्का साहब के पास पहुँचे, पर उन्होंने सूखा इन्कार कर दिया। लाला जी पंजाब सरकार के एक बड़े पदाधिकारी थे, पर उधर भी टिक्का साहब थे—एक खुद-मुख्तार रियासत के एक-मात्र उत्तराधिकारी! वे बड़े-से-बड़े आदमी को इन्कार कर सकते थे। लाला जी ने उनकी बहुत मिन्नत-समाजत की, सारी-की-सारी पार्टी ने उनसे कहा, पर उस समय दारोग़ा रामप्रताप और दूसरे सिपाहियों के अभिनय ने बना-बनाया काम बिगाड़ दिया। वे सब कहने लगे—यदि आप उस उद्दण्ड युवक को,

परिस्थितियों ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया और मेरा उस हवालात में कम-से-कम एक रात काटना अनिवार्य दिखायी देने लगा तो उन्हें इस बात की चिन्ता हुई कि किसी-न-किसी तरह मुझे आराम पहुँचाने की फ़िक्र की जाय। वे दारोग़ा रामप्रताप से मिले, पाँच रुपये उनकी भेंट किये, दो रुपये छोटे दारोग़ा की नज़र किये गये, एक-एक रुपया उन दो सिपाहियों को दिया गया, जिनकी ड्यूटी मुझ पर लगी थी। इसके बाद जो फल बचे थे, वे उनके हवाले किये गये।

इस तरह हमारी पार्टी जो ख़ुश-ख़ुश आयी थी, बिना खाये-पीये, मुँह लटकाये वापस हुई। उन सब फलों में जो कुछ मुझे मिला, उसका उल्लेख कर चुका हूँ। जब लाला जी से कहा तो बोले, "यही ग़नीमत थी कि आपको कुछ तो मिल गया।"

मेरे खाने-पीने की व्यवस्था कर और सिपाहियों की मुट्ठी गर्म करके लाला जी मशोबरे पहुँचे। वहाँ उन्होंने तीन रिक्शा किराये पर लीं और दो और आदमियों को साथ ले कर पार्टी को वहीं छोड़ छोटे शिमले पहुँचे। घर में खाना तैयार था, पर वहाँ पहुँचते ही उन्होंने कपड़े बदले और फिर बाहर को चल पड़े। पत्नी ने कहा—'खाना तो खाते जाइए, अभी आये अभी चले।'

"मास्टर जी गिरफ़्तार हो गये हैं।" और जैसे आकाश से वज्रपात हुआ हो। सब मौन, स्तब्ध बैठे रह गये। मेज़ों पर खाना चुना-का-चुना रह गया। लाला जी बाहर निकल आये।

उस रात घर में किसी ने खाना नहीं खाया। बच्चे मुझ से हिल गये थे, दोनों रोते-रोते सो गये, लाला जी की पत्नी भी उसी तरह बे- खाये-पीये करवटें बदलती रहीं।

सारी रात लाला जी रिक्शा ले कर घूमते रहे। उन्हें पता चला कि वे सेठ साहब जिनकी कोठी लाला जी ने किराये पर

ने रखी थी, टिक्का साहब के लेनदार हैं, उनके सहस्त्रों रुपये टिक्का साहब की ओर निकलते हैं। चुनांचे वे उनके यहाँ पहुँचे। उनकी दुकान माल रोड पर है। वे दुकान बढ़ा कर घर जा रहे थे, जब लाला जी ने उनसे सिफ़ारिशी चिट्ठी माँगी। लाला जी के चेहरे पर ऐसी परेशानी और स्वर में ऐसा निवेदन था कि वे इन्कार न कर सके। वहाँ से लाला जी कमिश्नर साहब की कोठी पर गये, जो सरकार की ओर से इधर की रियासतों के एजेण्ट हैं। उनसे भी लाला जी ने एक पत्र लिया। उस समय किसी ने एक वकील साहब का पता दिया, जिनकी टिक्का साहब से गहरी छनती थी, दोनों हम-नवाला हम प्याला थे। वे शिमले के सिटी फ़ादर भी थे और हिन्दू भी। लाला जी ने उन्हें अपने साथ ले चलने का विचार किया और इस ख़याल से उन्हें पक्का करने मकान पर गये, पर वे अभी तक क्लब से वापस न आये थे। लाला जी क्लब पहुँचे। वहाँ से पता चला कि वे घर चले गये हैं। फिर घर आये, पर वकील साहब शायद रास्ते में ही किसी होटल में तशरीफ़ ले जा चुके थे। रिक्शा वालों को सवेरे आने के लिए कह कर लाला जी कपड़े उतारे बिना बिस्तर पर लेट गये।

रात नींद किसे आती। प्रातः ही रिक्शा वाले आ गये। लाला जी अपने एक मित्र के यहाँ पहुँचे, जिनकी उन वकील साहब से मित्रता थी। तीसरी रिक्शा उनके लिए साथ ही लेते गये। वहाँ पहुँचे तो मालूम हुआ कि अभी बाथरूम में गये हुए हैं। आध घंटा तक लाला जी आशा और निराशा के भँवर में गोते खाते रहे। ख़ुदा-ख़ुदा करके वकील साहब आधे घंटे बाद स्नान से फ़ारिग़ हो कर बाथरूम से निकले। लाला जी ने उनसे मेरे दुर्भाग्य की कहानी सुनायी और जल्दी चलने को कहा। वकील साहब कहने लगे, "खाना बन रहा है, अभी खा कर चलते

हैं।"

लाला जी के लिए यह आध घंटा भी आधी सदी के समान बीता। उन्होंने वकील साहब से प्रार्थना की, "आप किसी-न-किसी तरह अभी चलने का कष्ट करें। राम जाने उस बेचारे पर क्या बीती हो। इन सिपाहियों से भगवान ही बचाये। एक बार जिसके पेश पड़ जायें उसका बचना कठिन है।"

लाला जी की प्रार्थना बहरे कानों पर पड़ी। वकील साहब टस-से-मस न हुए। कहने लगे, 'कोई बात नहीं, अभी पांच मिनट में चलते हैं।' हां उन्होंने यह कृपा अवश्य की कि टिक्का साहब को यह फ़ोन कर दिया, कि वे इस केस में दिलचस्पी रखते हैं। इसलिए वे उसका निर्णय उनके पहुँचने तक न करें, पर यह टेलीफ़ोन मशोबरे के डाकखाने से किया गया था। वहां से कोई आदमी टिक्का साहब तक यह सन्देश पहुंचाने गया या नहीं, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। शायद मैं उस समय तक छोड़ दिया गया था।

खैर, वकील साहब ने खाना खाया, फिर कपड़े पहने और पूरे डेढ़ घंटे के बाद तैयार हुए। एक वकील, दूसरे सिटी फ़ादर और वो भी शिमला जैसे नगर के। यदि वो शान न दिखाते तो और कौन दिखाता! एक बड़ी मोटी-सी किताब भी उन्होंने साथ ले ली। शायद भारतीय दण्ड-विधान का वकीली एडीशन था, ताकि ज़रूरत पड़ने पर काम आ सके। लेकिन उन्हें उसका उपयोग करने का कष्ट न करना पड़ा, क्योंकि वे अभी सीधी पहुँचने भी न पाये थे कि मार्ग ही में मैं उन्हें मिल गया।

०

अपनी कहानी ख़त्म करने पर लाला जी ने सेवल्ज होटल के मैनेजर और इन वकील महोदय को बड़ा धन्यवाद दिया। मुझे भी उन महानुभावों से कुछ श्रद्धा हो गयी। सिटी फ़ादर हों तो

ऐसा हो, जो किसी गरीब नागरिक के कष्ट को अपना कष्ट समझे। उसे कष्ट से छुट्टी दिलाने के लिए अपना बहुमूल्य समय लगाने को तैयार हो जाय। उन वकील साहब के प्रति मेरी यह श्रद्धा उस समय तक बनी रही, जब तक कि उन्होंने वह सहानुभूति दिखाने की फ़ीस के तौर ५०) रुपये का बिल नहीं भेज दिया।

बातें करते-करते हम सड़क पर आ गये। वकील साहब मेला देखने चले गये थे। उनके लिए रिक्शा छोड़ कर, दो रिक्शाओं में हम घर की ओर रवाना हुए। वकील साहब ने वह रिक्शा रात के नौ बजे छोड़ी। मैंने भी पहली बार रिक्शा की सैर कर ली। वह सैर समझ लीजिए, मुझे २५) रुपये में पड़ी। घर जा कर जब लाला जी ने मुझे खर्च का हिसाब दिया तो मालूम हुआ कि ५०) के करीब खर्च आ चुका है। मैंने जो यह समझा था कि मेरे इस नये अनुभव का खर्च, मेरी ऐनक की कीमत और मेरा शारीरिक कष्ट है, गलत साबित हुआ। ऐनक की कीमत को मिला कर मेरे कोई साठ रुपये लग गये और यदि कहीं मुझे वकील साहब का ५०) रुपये का बिल भी देना पड़ता तो सौ से अधिक का जूता पड़ता और वह भी निर्दोष।

घर आ गया था। लाला जी की पत्नी और बच्चे इस प्रकार आगे-आगे मुझे देखने आये जैसे मैं फांसी की रस्सी से बच कर आया हूँ। खाना आया और यद्यपि कल से कुछ न खाया था, पर हाथ तक लगाने को जी न चाहा। मैंने सबसे पहले दातुन की, फिर हाथ-मुँह धोया। तब कुछ जल-पान किया।

सारा दिन मित्रों का तांता बंधा रहा। सब को वही कहानी बार-बार सुनायी गयी। सब जानते थे, पर मुझसे पूछने में शायद उन्हें रस मिलता था। एक निर्दोष आदमी के लिए भी

दूसरों पर अपनी निर्दोषता सिद्ध करने की कठिनाई का पहली वार अनुभव हुआ।

इन्हीं वातों में शाम हो गयी। लाला जी मेरी ऐनक बनवाने के लिए शिमले ले गये थे, मैं खाना खा कर थका-माँदा अपने नर्म-गर्म विस्तर पर जा लेटा। पिस्सुओं से काटा हुआ शरीर और गुदगुदा विस्तर—कुछ अजीव से स्वर्गीय आनन्द का आभास मिला, पर जिस क्षण मैंने विजली वुझायी और रेशमी रज़ाई को ऊपर खींच लिया तो अँधेरे में मेरे सामने उस चोर का चित्र खिच गया, जिसने उस काल-कोठरी में मेरी जगह ले ली थी। मेरी आँखें अनायास नम हो आयीं और मेरी नींद ग़ायव हो गयी।